Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

ईश केन कठ उपनिषद्

सरल सुबोध भाषा भाष्य

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः।
तपोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥1॥

अर्थ- एक श्रेय है और दूसरा प्रेय है। ये दोनों विभिन्न प्रयोजन वाले होते हुए भी पुरुष को बाँधते हैं। इन दोनों में जो श्रेय को ग्रहण करता है उसका भला होता है, और जो प्रेय को ग्रहण करता है वह अपने उद्देश्य से गिर जाता है।

गुरुदत्त

43
E
1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167891

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश-केन-कठ उपनिषद्

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश-केन-कठ उपनिषद्

गुरुदत्त

Central Library
167891
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

081
167891

हिन्दी साहित्य सदन
www.hindisahityasadan.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-E

© ईशान दत्त

Rs 100/-

प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी. डी. चैम्बर्स , 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग पुलिस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-110005
ई–मेल indiabooks@rediffmail.com
hindisahityasadan@gmail.com
Website www.hindisahityasadan.com
दूरभाष 09213527666, 07065618655
संस्करण 2021

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

भारतीय वाङ्मय में ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता—तीनों को 'प्रस्थान त्रयी' कहा है। 'प्रस्थान त्रयी' का अभिप्राय है उत्कृष्ट ज्ञान के तीन स्थान (ग्रन्थ)।

ज्ञान क्या है?

ब्रह्मसूत्र में कहा है—**सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्**। अर्थात् जो सर्वत्र (सब स्थान पर) प्रसिद्ध है, उसके कथन से (ज्ञान की उपलब्धि होती है)।

इस संसार में सब जगह क्या प्रसिद्ध है? निःसन्देह यह जगत्, जो चलता हुआ अपने चारों ओर दिखाई देता है, सुनाई दे रहा है, चला आ रहा है, स्पर्श किया जा रहा है अथवा सूँघा जा रहा है, वह ही सब स्थान पर प्रसिद्ध है। इस जगत् से ही ज्ञान प्राप्त होता है और वह ज्ञान सत्य ही है।

जगत् को उपनिषत्कारों ने *सत्य* कहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में *सत्य* की विशद व्याख्या की गई है। उसका निष्कर्ष है—**आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त, सत्यं ब्रह्म, ब्रह्म प्रजापतिम्**—(बृ० उ० 5-5-1) यह (कार्य-जगत्) पहले आपः ही था। उस आपः से सत्य की रचना की गई। अतः सत्य ब्रह्म है। ब्रह्म ने प्रजापति की रचना की।

अतः सर्वत्र प्रसिद्ध यह जगत् है और ब्रह्मसूत्र कहते हैं कि इसके कथन से परम ब्रह्म (वेद) का ज्ञान प्राप्त होता है।

यदि यह ठीक है तो 'प्रस्थान त्रयी' में इसी जगत् के ज्ञान का उल्लेख होना चाहिए। हमारा विचार है कि यही (जगत् का ज्ञान) इन तीनों ग्रन्थों में वर्णित है।

स्वामी शंकराचार्य जगत् को मिथ्या मानते हैं जबकि बृहदारण्यक उपनिषद् में जगत् को आपः से बना हुआ कहा है।

परन्तु जगत् क्या है?

इसका वर्णन 'ब्रह्मसूत्र' में भली प्रकार किया गया है। एक दूसरे ढंग से और एक दूसरे ही उद्देश्य से उसी की व्याख्या भगवद्गीता में की गई है और हमारा यह निश्चित मत है कि उपनिषदों में भी उसी अर्थात् जगत् की ही व्याख्या है। जगत् ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य है और सत्य की व्याख्या ही परम ज्ञान है।

जगत् क्या है वेद में बहुत सरल ढंग से इसकी व्याख्या कर दी गई है। वहाँ कहा है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

(ऋ० 1-164-20)

सब उपनिषदों का सामूहिक (Collective) निष्कर्ष यही है कि जगत् सत्य है। इसका ज्ञान ही सत्य ज्ञान है और इस जगत् में तीन अक्षर-पदार्थ प्रतिष्ठित हैं। इन तीन अक्षरों के अतिरिक्त ब्रह्म के जाननेवाले भी इस परम सत्य में उपस्थित हैं। वह परम सत्य परम ब्रह्म है।

एक अन्य उपनिषद् में कहा है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥ 6॥
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः॥

(श्वे० 1-6, 7)

सत्य ज्ञान का मूल वेदों में है। मूल का अभिप्राय है संक्षेप में पूर्ण वृत्तान्त। अतः वेद (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व) जगत् के ज्ञान के ग्रन्थ हैं।

जगत् सत्य है। सत्य का ज्ञान वेद में है और वेद कहता है कि दो आत्मतत्त्व प्रकृतिरूपी वृक्ष पर बैठे हैं। एक उस वृक्ष के फल खाता है और दूसरा साक्षीमात्र देखता है (ऊपर दिये वेद-मन्त्र में यही कहा है)।

वेदों से लेकर भगवद्गीता पर्यन्त सभी में इसी सत्य परम ब्रह्म के ज्ञान का वर्णन है। गीता उपनिषद्-रूपी गौओं का दुहा हुआ दूध मानी जाती है। परन्तु हम समझते हैं कि उपनिषद् स्वयं वेदों के एक अंशमात्र का ही व्याख्यान है। वेद में उपनिषदों से बहुत अधिक है। उपनिषत्कार किसी कारण से वेद के एक अंश का ही वर्णन कर सके हैं। इस पर भी हमारा मत है कि उपनिषद् भी तीन अक्षरों का वर्णन करते हैं और कार्य-जगत् तीनों अक्षरों के मिले-जुले कार्य का परिणाम है।

मुण्डकोपनिषद् में तीनों अक्षरों का वर्णन है। ऐसा ही अन्य उपनिषदों में है। यदि कहा जाए कि उपनिषदों में केवल परमात्मा का ही वर्णन है, तब यह कहना पड़ेगा कि ऐसा कहनेवालों को उपनिषद् का भाव ही समझ नहीं आया।

ईशावास्योपनिषद् में भी है तो तीनों अक्षरों का वर्णन, परन्तु यह उपनिषद् बहुत ही छोटा होने से तीनों अक्षरों का इसमें सन्तुलित वर्णन नहीं है। परमात्मा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन तो विशेष है और अन्य का संकेतमात्र है। इस पर भी है तीनों का वर्णन।

वस्तुस्थिति यह है कि ईशावास्योपनिषद् में केवल 18 मन्त्र हैं और यह यजुर्वेद का एक छोटा-सा अध्याय है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के 17 मन्त्र हैं और इस उपनिषद् के प्रवक्ता ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के सत्रह मन्त्रों के साथ एक मन्त्र और मिलाकर इस उपनिषद् में 18 मंत्र दिये हैं। यजुर्वेद के इस अध्याय के प्रथम मन्त्र का प्रथम पद है 'ईशावास्यम्'। इसी पद से इस उपनिषद् का नाम ईशावास्योपनिषद् है। एक मन्त्र क्या और क्यों मिलाया गया है, इसकी विवेचना यहाँ आवश्यक नहीं। इस पर भी पूर्ण उपनिषद् जहाँ यजुर्वेद का उपसंहार कहा जा सकता है, वहाँ रचित जगत् का बहुत संक्षिप्त वर्णन करता है।

ब्रह्म तीन हैं। ब्रह्म का अर्थ है अति महान् पदार्थ। ये तीन अद्वितीय अपने में एक ही हैं। ये अजन्मा, अक्षर और अति सूक्ष्म (अव्यक्त) हैं। इन तीनों के संयोग से ही जगत् बनता है। अक्षर हैं परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति।

इसी बात को प्रकट करने के लिए हमने एक वेदमन्त्र भी दिया है। यही मन्त्र (ऋ० 1-164-20) कम-से-कम दो अन्य उपनिषदों में ज्यों-का-त्यों आता है, यानी मुण्डकोपनिषद् में और श्वेताश्वतर उपनिषद् में। अभिप्राय यह है कि वेदों से ही उपनिषत्कारों ने इस मन्त्र को लिया है। वेद उपनिषदों से बहुत पहले के कहे गए ग्रन्थ हैं। इस कारण यह मन्त्र (द्वा सुपर्णा—ऋ० 1-164-20) वेद से ही लिया गया है।

'यजुर्वेद का मुख्य विषय कर्म है' अर्थात् मनुष्य को जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए। इस पूर्ण शिक्षा का उपसंहार ही यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में दिया गया है और यही 'ईशावास्योपनिषद्' है।

—गुरुदत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

ईशावास्योपनिषद्........................... 9
केनोपनिषद् 30
कठोपनिषद् 54

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशावास्योपनिषद्

शान्तिपाठ

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह (परम ब्रह्म) पूर्ण है। यह (कार्य-जगत्) भी पूर्ण है। पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति कही जाती है। पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर शेष भी पूर्ण ही बचता है।

यह परम ब्रह्म पूर्ण है। परम ब्रह्म का अभिप्राय है—

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म। —*श्वेता० 1-7*

अर्थ—ऊपर जो कहा है वह परम ब्रह्म ही है। ऊपर क्या कहा गया है? यह इसी उपनिषद् की भूमिका में हम बता चुके हैं।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति॥

—*श्वेता० 1-6*

एक बहुत बड़े चक्र में जीव और सब-कुछ ठहरा हुआ है। उसमें हंस (जीवात्मा) फँसा हुआ चक्कर खा रहा है।

इससे पृथक् एक प्रेरणा देनेवाला आत्मा है। जो (जीव) उससे संयुक्त हो जाता है वह जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है। मुक्त आत्मा भी इसी परम ब्रह्म में हैं।

यह सब-कुछ जो है, वह परम ब्रह्म है। ऊपर शान्तिपाठ में कहा है कि यह परम ब्रह्म पूर्ण है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् का प्रवक्ता भी कहता है कि इसमें सब-कुछ है—जीव-जन्तु, यहाँ तक कि प्रेरणा देनेवाला परमात्मा भी और मुक्त जीव भी।

इस शान्तिपाठ में कहा है कि यह पूर्ण है।

इन मन्त्रों से यह पता चलता है कि इस परम ब्रह्म में सब-कुछ है। इस सब-कुछ के विषय में इसी श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥ 9॥
संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्-ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ 8॥

—श्वेता० 1-9, 8

श्वेताश्वतर उपनिषद् के उक्त मंत्रों के क्रम को हमने बदल दिया है। यह इस कारण कि इनके भाव अधिक स्पष्ट हो सकें। इन मन्त्रों का अर्थ है—

एक ज्ञानवान् (परमात्मा) और एक अज्ञानी (जीवात्मा), सामर्थ्यवान् तथा असामर्थ्यवान् दो अजन्मा (अनादि) तत्त्व हैं। एक तीसरा भी अजन्मा (अनादि तत्त्व) है जो भोग करनेवाले के भोग के लिए नियुक्त है (यह प्रकृति है)। अनादि आत्मा ने संसार के रूप निर्माण किये हैं और जो निश्चय से कर्ता है। इन तीनों को जब (मनुष्य) जानता है तो पता चलता है कि यही ब्रह्म है।

परस्पर मिले हुए क्षर और अक्षर, व्यक्त और अव्यक्त की परमात्मा पालना करता है। और वह आत्मा जो सामर्थ्यवान् नहीं है, संसार के भोगों में फँसा हुआ है। वह परमात्मा को जानकर सब बन्धनों से छूट जाता है।

इसी भाव का एक वेद-मन्त्र भी है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥

ऋ० 1-164-1

इस सुन्दर परिणामी (प्रकृति) का होता, इसके मध्य भोग करनेवाला इसका भाई है। तीसरा भाई है जो इन दोनों की रक्षा और पालना करता है। वह अपने सात पुत्रों सहित उपस्थित है।

इस वेद-मन्त्र में भी क्षर-अक्षर से मिले-जुले संसार का वर्णन है।

शान्तिपाठ में कहा है कि यह परम ब्रह्म पूर्ण है।

सिद्धान्त-रूप में तीन ही मूल पदार्थ हैं। उनके होने से ही वह (परम ब्रह्म) पूर्ण कहा जा सकता है।

उपनिषत्कार कहता है परमब्रह्म पूर्ण है, अर्थात् इन तीनों अजन्मा (अक्षर) पदार्थों को रखता है। विश्व में दोनों स्थानों पर ये तीनों हैं—वह स्थान जहाँ रचना हो गई है अथवा रचना हो रही है और वह स्थान भी जहाँ अभी रचना नहीं है। 'विश्व पूर्ण है' का अभिप्राय यही हो जाता है कि रचित और अरचित दोनों स्थानों पर तीनों ही मूल तत्त्व उपस्थित हैं।

अरचित विश्व को (माण्डूक्य—10 में) कालातीत कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल एक गणना की वस्तु है। गणना आरम्भ करने के लिए कोई प्रारम्भिक बिन्दु होना चाहिए। इस अनादि अनन्त विश्व में तो गणना तब ही हो सकती है जब पहले हम किसी आरम्भिक बिन्दु (Starting point) का निश्चय करें। कार्य-जगत् में तो जब रचना आरम्भ होती है तब से काल-गणना आरम्भ की जाती है। परन्तु जहाँ रचना नहीं, वहाँ यह प्रारम्भिक बिन्दु न होने से वह स्थान कालातीत कहा जाता है।

यहाँ इस शान्तिपाठ में जहाँ रचना हो गई अथवा हो रही है और जहाँ रचना नहीं है, दोनों को पूर्ण कहा है, यानी दोनों स्थानों पर तीनों अक्षर विद्यमान हैं। जैसाकि हम बता चुके हैं अक्षर तीन हैं—परमात्मा, जीवात्माएँ और प्रकृति के परमाणु।

कहा है यह (विश्व) पूर्ण है। यह कार्य-जगत् भी पूर्ण है। पूर्ण से ही पूर्ण का जन्म कहा है। पूर्ण में से जब पूर्ण निकल गया—इसका अभिप्राय यह है कि तीनों अक्षरोंवाले विश्व में से जब तीनों अक्षरवाला कार्य-जगत् निकल गया, तब भी शेष में तीनों ही अक्षर रहते हैं और उसी अनुपात में जिसमें पहले थे।

विचारणीय यह है कि जब यहाँ कार्य-जगत् बन गया तो पीछे जो बचा उसमें भी तीन अक्षर विद्यमान कैसे हैं ? वह तब भी पूर्ण ही रहता है। यह नहीं कि कोई अक्षर कम या अधिक हो गया हो।

इसी प्रकार उपनिषत्कार ने इस शान्तिपाठ द्वारा यह बताया है कि यह विश्व पूर्ण अर्थात् तीन अक्षरवाला है। उसमें बना जगत् भी तीन अक्षर वाला है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशावास्योपनिषद्

ओम् ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥ 1॥

अर्थ—इस जगत् में जो कुछ चलायमान है, वह उस ईश्वर द्वारा छाया हुआ है। उसका त्यागभाव से प्रयोग कर। लालच न कर। यह किसका है? (अर्थात् तुम्हारा नहीं है।)

जगत् का अर्थ है चलायमान। विश्व में चलायमान जगत् के अतिरिक्त भी है—वह स्थान जहाँ अभी रचना आरम्भ नहीं हुई। बृहदारण्यक उपनिषद् 5-1-1 का अर्थ करते हुए हमने बताया है कि वहाँ सब पूर्ण है और यह रचित जगत् भी पूर्ण है। दो पृथक्-पृथक् स्थान बताए हैं—वह जहाँ रचना नहीं हो रही और वह जहाँ रचना हो रही है। सब शब्द से अभिप्राय है वह स्थान जहाँ कार्य-जगत् कार्य कर रहा है और जहाँ अभी कार्य-रचना आरम्भ नहीं हुई। वेद में अम्बर, व्योम, पूर्ण स्थान इत्यादि शब्दों से विश्व का कथन किया गया है।

परन्तु इस मंत्र (ईशा०-1) में तो 'जगत्यां जगत्' का ही वर्णन है। यहाँ कहा है कि यह चलायमान जगत् ईश्वर से आच्छादित हो रहा है। शब्द है वास्यम्। इसकी व्युत्पत्ति वास् धातु से है। धातु पाठ में कहा है **वास्—उप सेवायाम्**। जो समीप से सेवा किया गया हो अर्थात् जिस पर कार्य किया गया हो।

अतः 'ईशा वास्यम्' का अर्थ बनता है कि चलायमान जगत् ईश से सेवा किया गया है अर्थात् उससे बनाया गया है।

इसका अभिप्राय यह है कि विश्व में से कुछ भाग पर ईश्वर ने निर्माण-कार्य किया है। वह जगत् है। जहाँ-जहाँ निर्माण-कार्य हुआ है वहाँ पर जगत् (Created one) गतिशील हो गया है। सामान्य शब्दों में इस जगत् के सब पदार्थ परमात्मा के बनाए हैं। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी में उनके बनाने का सामर्थ्य नहीं है।

जीव-जन्तु इस निर्मित जगत् का भोग करते हैं। इसी कारण कहा है कि इसके बनानेवाले तुम नहीं हो। अतः इसका प्रयोग करते हुए लालच मत करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह है कि उतना ही प्रयोग करो जितना आवश्यक हो। यह रचित जगत् किसका है ? अभिप्राय यह है कि यह तुम्हारा नहीं है।

हमने भूमिका में लिखा है कि इसमें तीनों अक्षर-पदार्थों का वर्णन है। यह प्रथम मंत्र में ही स्पष्ट हो गया है। यह जगत् है। ईश्वर (परमात्मा) को इस जगत् का निर्माता कहा है। और जो इसका भोग करनेवाला है, उसे कहा है कि यह निर्मित जगत् तुम्हारा नहीं है। यह ईश्वर के द्वारा निर्माण किया हुआ है।

बुद्धि यही मानती है कि यह जगत् है, इसका निर्माता है और इसका भोग करनेवाला है। यही इस मन्त्र से प्रकट होता है। भुक्त, भोक्ता और निर्माता तीन के स्वीकार करने से किसी सर्वज्ञ परमात्मा की सिद्धि हो सकती है।

स्वामी शंकराचार्य यह समझते हैं कि यज्ञ-कर्मों में विनियोग ही केवल वेदमन्त्रों का उपयोग है। वह यह भी मानते हैं कि ईशावास्योपनिषद् के मन्त्र विनियोग में प्रयोग नहीं किये जाते। इस कारण ये मन्त्र उपनिषद् में स्थान पा गए हैं।

इसी उपनिषद् के 'सम्बन्ध भाष्य' के आरम्भ में ही आप लिखते हैं—

ईशा वास्यमित्यादयो मन्त्राः कर्मस्वविनियुक्ताः।
तेषामकर्मशेषस्यात्मनो याथात्म्यप्रकाशकत्वात्।
याथात्म्यं चात्मनः शुद्धत्वापापविद्धत्वैकत्व-
नित्यत्वाशरीरत्वसर्वगतत्वादि वक्ष्यमाणम्। तच्च कर्मणा
विरुध्येतेति युक्त एवैषां कर्मस्वविनियोगः॥

अर्थ—ईशा-वास्यादि मंत्रों का कर्म में विनियोग नहीं है, क्योंकि वे आत्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले हैं जोकि कर्म का शेष नहीं है। आत्मा का यथार्थ स्वरूप शुद्धत्व, निष्पापत्व, एकत्व, अशरीरत्व और सर्वगतत्व आदि हैं। जो आगे कहा जानेवाला है उसका कर्म से विरोध है, अतः इन मंत्रों का कर्म से विनियोग न होना ठीक ही है।

इस लेख में दो भ्रम हैं। एक तो यह कि कर्म को यज्ञकर्म समझा गया है। कर्म एक व्यापक अर्थवाला शब्द है। कोई कर्म यज्ञ नहीं भी हो सकता। यज्ञ केवल उन कर्मों को कहते हैं जो सर्वहिताय अर्थात् निष्काम भाव से किये जाएँ। यह हम अगले मंत्र की व्याख्या में कहेंगे। यहाँ तो इतना समझ लेना चाहिए कि यज्ञ के बिना भी कर्म हो सकते हैं और मंत्रों के आदेश उन कर्मों के विषय में भी हैं।

यज्ञ का अर्थ केवल हवन-यज्ञ (जिसमें समिधा, हव्य इत्यादि होम किये जाएँ) नहीं है, न ही वेदमन्त्रों का प्रयोग केवल इन यज्ञकर्मों में है। विनियोग का अर्थ है विशेष सम्बन्ध। यह तो अन्य कर्मों से भी है। इस उपनिषद् में भी मनुष्य के कर्मों के विषय में मंत्र कहे गए हैं। अतः हम कह सकते हैं कि उन मन्त्रों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनियोग उन कर्मों से है। यह अगले मन्त्र में स्पष्ट हो जाएगा।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ 2॥

अर्थ—इस लोक में कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो। तुमको यह अन्य प्रकार से न हो (तुम्हारा जीवन कर्मरहित न हो), तुम्हें कर्मों का लेप न हो। (कर्म निष्काम भाव से हो जिससे तुम उनके फल से बचे रहो।)

एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है। यहाँ कर्म और वह भी निष्काम भाव से करने के लिए कहा है। निष्क्रिय बैठने के लिए नहीं कहा है।

भगवद्गीता को उपनिषद्-रूपी गौओं का दूध अर्थात् निष्कर्ष माना जाता है और उसमें कर्म के विषय में व्याख्या से कहा है कि अकर्मण्य रहना न केवल अनुचित है वरन् असम्भव भी है।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ *भ०गी० 3-5*

अर्थात् कोई भी पुरुष, किसी काल में भी क्षणमात्र के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रहता। सब (कर्म) प्रकृति (शरीर) की उपज ही हैं।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ *भ०गी० 3-8*

नियत (शरीर-पालनादि के लिए आवश्यक) कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म नहीं करेगा तो शरीर-पालन भी सिद्ध नहीं होगा।

गीता के इन श्लोकों में ऊपर कहे ईशावास्योपनिषद्-मंत्र की व्याख्या ही है। हम बता चुके हैं कि यह उपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय है। अतः यह सिद्ध है कि गीता वेद-व्याख्या में ही यह सब-कुछ कह रही है।

और भी कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥ *भ०गी० 3-9*

अर्थ—यज्ञ (निष्काम भाव से किये कर्मों) के अतिरिक्त कर्म मनुष्य को इस संसार से बाँधते हैं। (इसलिए) हे अर्जुन! आसक्तिरहित होकर यज्ञ के निमित्त (सर्वहिताय अथवा परमात्मा के निमित्त) भली प्रकार कर्म कर।

यज्ञ का अभिप्राय है परमात्मा से योग करके (अर्थात् उसका अनुकरण करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए)। इस विषय में भी भगवद्गीता में कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ *भ० गी० 3-10*

अर्थ—प्रजापति परमात्मा ने सृष्टि-रचना के समय यज्ञरूप में प्रजा की रचना की थी। इसी (यज्ञ) के द्वारा कर्म करने की तुम्हारी बुद्धि होवे। यह यज्ञ ही तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला होगा।

इसका अभिप्राय है कि परमात्मा भी, सृष्टि की रचना कर सबके हित की बात कर रहा है। वह जीवात्मा को मोक्ष प्राप्त करने का साधन उपस्थित कर रहा है। अतः जीवात्मा को भी यज्ञरूप ही कर्म करने चाहिएँ।

मन्त्र के अर्थ तो स्पष्ट ही हैं, परन्तु स्वामी शंकराचार्य इस मन्त्र के अर्थ में एक बात जिसका न उपनिषद् से सम्बन्ध है न वेद-शास्त्रादि से, प्रश्नरूप में कहकर उसका उत्तर देने लगे हैं।

स्वामी शंकराचार्य लिखते हैं—

"पूर्वेण संन्यासिनो ज्ञाननिष्ठोक्ता द्वितीयेन तदशक्तस्य कर्मनिष्ठेति।

ईशा० शंकरभाष्य-2

स्वामीजी प्रश्न करते हैं कि यह कैसे पता चला कि इस उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में संन्यास की ज्ञाननिष्ठा का कथन और दूसरे मन्त्र में उन मनुष्यों के लिए कहा है कि जो संन्यास के अयोग्य हैं और उनके लिए कर्म करने को कहा है?

यह तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। हमने बताया है कि इस उपनिषद् के प्रथम मन्त्र में कहा है कि लालच छोड़कर भोग करो। भला इसमें संन्यास और ज्ञाननिष्ठा की बात कहाँ से आई? सावधानी से कर्म करने को कहा है।

और इस दूसरे मन्त्र में कहा है कि 'जो ज्ञान में निष्ठा के अयोग्य हैं'। ज्ञान में निष्ठा का अभिप्राय है कि ज्ञान में ही लीन रहें और कर्म न करें, अर्थात् ज्ञानार्जन करना कर्म नहीं और ज्ञानयुक्त कर्म करना कर्म नहीं।'

इस मन्त्र में स्पष्ट कहा है कि कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो।

तो स्वामी शंकराचार्य का क्या यह अभिप्राय है कि ज्ञानी मनुष्य सौ वर्ष तक जीने की इच्छा न करें?

ऐसा भाव मन्त्र में नहीं है। मंत्र में स्पष्ट कहा है कि कर्म करते हुए जियो। यदि कर्म करते हुए सौ से अधिक वर्ष तक जी सकते हो तो जियो। आवश्यक शर्त है कि कर्म से अलिप्त रहते हुए जियो अर्थात् कामनारहित होकर कर्म करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
ताꣳस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ 3॥

अर्थ—वे लोग जो आत्मा का हनन करते हैं, मरने के अनन्तर वे असुर-सम्बन्धी लोकों में, अज्ञान से आच्छादित भटकते रहते हैं।

इस मन्त्र में कुछ शब्द समझने आवश्यक हैं।

प्रथम शब्द है आत्मा का हनन करनेवाले। आत्मा से अभिप्राय जीवात्मा नहीं है। जीवात्मा का तो हनन हो ही नहीं सकता। अभिप्राय है अपनी उदात्त भावनाओं की हत्या करनेवाले। उदात्त भावनाओं को आत्मा इस कारण कहा है क्योंकि वे आत्मा की उन्नति में साधन हैं। वे क्या हैं? इनका वर्णन यजुर्वेद में (जिसका यह उपनिषद् उपसंहारमात्र है) भली प्रकार किया गया है।

यजुर्वेद पढ़ने से इस बात का पता चलता है। उदात्त भावनाओं में कर्म छोड़ केवल ज्ञानार्जन करने की बात नहीं, न ही आत्मा के हीन कर्मों में फँसने से अभिप्राय है। इसे स्मृतिकार एक सरल ढंग से समझाते हैं। स्मृति का वचन है—

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।'

अर्थ—जो अपने अनुकूल नहीं वह दूसरे के साथ भी व्यवहार में न लाओ।

संक्षेप में यह कहा जाता है कि आत्मा की प्रज्ञा या विवेचनशक्ति (Conscience) का नाश करना ही आत्मा का हनन करना है।

ऊपर के मन्त्र में दूसरा शब्द है अज्ञान के अन्धकार से आवृत। ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता है। जो व्यक्ति इन इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को नहीं जानता वह अन्धकार से आच्छादित माना जाता है।

प्रायः पशु इस प्रकार की स्थिति से आच्छादित होते हैं। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। एक गाय है। मार्ग पर चलती-चलती एक हरे-भरे खेत को देखती है। तब वह उसके खाने के लिए खेत में मुख डाल देती है। खेत का मालिक लाठी ले उसे खेत से बाहर कर देता है। एक-आध प्रहार भी कर देता है। गाय खेत से बाहर हो मार्ग पर चल पड़ती है। कुछ दूर जाकर वह एक अन्य स्थान पर हरियाली देख खाने को लपकती है। वहाँ से भी वह हटा दी जाती है। पूर्व-व्यवहार अर्थात् अपनी मार को वह भूल जाती है और पुनः वही करने की प्रवृत्ति रखती है। यह अन्धकार में विचरना है। आँखों से देखा और मन से मनन किया ज्ञान उसे स्मरण नहीं रहता। कई मनुष्य भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। बहुत हैं जो बार-बार चोरी करते पकड़े जाते हैं और पुनः चोरी करते हैं।

ऐसे मनुष्य असुरलोक (जन्म) में धकेल दिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'असुर जन्म' तीसरा पद है जो समझने का है। सुर कहते हैं इन्द्रियों को। जो इन्द्रियों को प्रसन्न करने के लिए व्यवहार करते हैं वे असुर कहाते हैं।

पुनः गाय का ही उदाहरण लिया जा सकता है। भूख के अधीन वह कार्य करती है और प्राप्त ज्ञान का विस्मरण कर पुनः वही कर्म करने लगती है। यह पशु-जीवन है।

जो व्यक्ति अपने आत्मा की आवाज को नहीं सुनता, वह मन से दुर्बल हो जाता है।

वह इसी प्रकार की योनि में जन्म लेता है। ऐसी योनि में इन्द्रियाँ बलवती होती हैं और जीवात्मा को अपने विषयों में बहा ले जाती हैं। इसी कारण यह योनि आसुरी योनि कहाती है। मंत्र कह रहा है जो आत्मा का हनन करते हैं, वे ऐसी योनि में जन्म लेते हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ 4॥

अर्थ—यह अद्वितीय अपने स्वरूप में और स्थान से अचल (न बदलने वाला) है। वह मन के वेग से आगे जानेवाला है। यह इन्द्रियों से पहुँचने के स्थान पर पहले ही पहुँचा होता है। वह स्थिर होने पर भी सब गतिशील पदार्थों से आगे होता है। उसके द्वारा 'आपः' और 'मातरिश्वा' धारण किये जाते हैं।

परमात्मा सर्वव्यापक है। इस कारण जहाँ भी कोई वेगवान वस्तु जाती है वहाँ परमात्मा पहले ही पहुँचा होता है। मन की गति अर्थात् मन से मनन करने की गति बहुत ही तीव्र समझी जाती है, परन्तु कहा है कि वह भी परमात्मा को पा नहीं सकता। क्योंकि उस स्थान पर परमात्मा पहले ही पहुँचा होता है।

इसी प्रकार कहा है कि यह अपने रूप और गति में स्थिर है। अभिप्राय यह है कि वह रूप में भी बदलता नहीं। सर्वव्यापक होने से वह चलने की आवश्यकता नहीं रखता। इसका अभिप्राय यह है कि अपनी स्थिति एवं रूप को नहीं बदलता। यह इस कारण कि वह विकाररहित है। जिस किसी भी वस्तु में विकार आता है वह वस्तु उस रूप में नाशवान् होती है। परमात्मा में विकार नहीं आता। यह बदलता नहीं। इसे 'अनेजत्' कहा है।

यह मंत्र परमात्मा की सर्वव्यापकता को समझाने के लिए है। अन्य वैदिक ग्रंथकारों ने भी परमात्मा को सर्वव्यापक कहा है। ब्रह्मसूत्र में कहा है कि जहाँ-जहाँ तक आकाश (space) है वहाँ-वहाँ तक वह परमात्मा को धारण किये हुए है।

मंत्र के अंत में शब्द है 'अपः मातरिश्वा'। अर्थात् परमात्मा, अपः और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातरिश्वा को धारण करता है। अप: है परमाणुओं के निबन्धन (संयोग) जिनसे जगत् के सब पदार्थ बने हैं। अप: इस जगत् का उपादान कारण (material cause) है। वर्तमान विज्ञान की भाषा में इसे परिमण्डलीय कण (atomic particles) कहा जाता है। इनसे जगत् के सब पदार्थ बने हैं।

मातरिश्वा वायु का नाम है और वायु परमात्मा की शक्ति है (ऋ० 1-2-1)। यह भी जगत् में एक कारण कहा जा सकता है। अतः, उपनिषद् में कहा है कि परमात्मा अप: और वायु को धारण करता है, अभिप्राय है कि उनसे कार्य लेता है।

इस उपनिषद् के प्रथम मंत्र में यह कहा गया है कि ईश्वर, जगत् की रचना करनेवाला है। जीवात्मा का इसके निर्माण में कुछ भी योगदान नहीं। इस कारण उसे इसका भोग सावधानी से करना चाहिए, आवश्यकता से अधिक नहीं करना चाहिए।

दूसरे मंत्र में कहा है कि मनुष्य कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक जीवन व्यतीत करे।

तीसरे मंत्र में कर्म करने की सम्मति दे दी कि कर्म करने में आत्मा का हनन न करो। जैसा अपने लिए उचित समझते हो वैसा ही दूसरों से व्यवहार करो।

चौथे मंत्र में कहा है कि वह सर्वव्यापक है और पूर्ण जगत् को धारण करने वाला है।

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ 5॥

अर्थ—वह (परमात्मा) चलता है और नहीं भी चलता। वह दूर है और समीप भी है। वह सबके भीतर भी है और सबके बाहर भी है।

इस मंत्र में परमात्मा की सर्वव्यापकता, एकमयता और उसके विश्वभर के कार्य हो सकने की बात कही है। अभिप्राय वही है जो मंत्र 4 का है। केवल कहने का ढंग भिन्न है।

इसकी सर्वव्यापकता तो इस बात से सिद्ध होती है क्योंकि इसका नियंत्रण सर्वत्र है। ब्रह्मसूत्र में कहा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः। सा च प्रशासनात्॥

(ब्र० सू० 1-3-10, 11)

यह व्योम को अन्त तक धारण करता है।
और उस पर शासन करने से।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥ 6॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—जो सब प्राणियों को आत्मा (परमात्मा) में ही देखता है और सब प्राणियों में आत्मा (परमात्मा) को ही समझता है, वह किसी से घृणा नहीं करता।

पूर्व-मंत्र 5 में परमात्मा को सब स्थान पर व्यापक कहा है, अर्थात् वह सब प्राणियों में है। इस मंत्र में कहा है कि जो मनुष्य परमात्मा को सब प्राणियों में जानता है और सब प्राणियों को परमात्मा में स्थित देखता है, वह किसी भी प्राणी से घृणा नहीं करता।

यह बात ध्यान रखने योग्य है कि परमात्मा सब प्राणियों में है और सब प्राणी परमात्मा में हैं—इसका यह अर्थ नहीं कि प्राणी ही परमात्मा है अथवा परमात्मा और प्राणी एक ही बात है। इस मंत्र से यह स्पष्ट है कि प्राणी परमात्मा से पृथक् है।

वास्तव में प्राणी तीन अक्षर-तत्त्वों का संयोग है—प्रकृति, जीवात्मा तथा परमात्मा। प्रकृति शरीर का उपादान कारण (material cause) है और जब इसमें जीवात्मा का प्रवेश होता है तो यह एक जीवित प्राणी हो जाता है। परमात्मा सर्वत्र उपस्थित होने से प्राणी में भी उपस्थित होता है। इस प्रकार प्राणी में जब यह जीवित होता है तो तीन अक्षर इसमें सम्मिलित होते हैं। ऋग्वेद (ऋ० 1-164-20) में इसी भाव को प्रकट किया है। प्रकृतिरूपी वृक्ष पर दो आत्मतत्त्व विद्यमान हैं। एक प्रकृति का भोग करता है और दूसरा साक्षीमात्र है।

इसको दूसरी प्रकार भी बताया है। सदा बूढ़ी होनेवाली (परिणामी) प्रकृति में इसका भाई जो प्रकृति का भोग करता है, बैठा है। एक तीसरा भाई भी है जो दोनों की रक्षा करता है और पालन करता है। वह भी प्राणी में बैठा है। इस तीसरे के सात पुत्र (सात प्राण) कार्य में उसकी सहायता करते हैं।

इस प्रकार परमात्मा सब प्राणियों में है और सब प्राणी परमात्मा में हैं। जैसा कि हमने बताया है कि सब प्राणी परमात्मा नहीं हो जाते, इसका यह अभिप्राय है कि प्राणी के सब कार्य परमात्मा के कार्य नहीं हैं।

जो व्यक्ति परमात्मा को सर्वव्यापक जानता है वह किसी से घृणा नहीं करता। इसका अभिप्राय यह नहीं कि जो प्राणी पाप-कर्म करते हैं उनको छूट दे दी जाए कि वे जो चाहें करें। घृणा न करने का यह अभिप्राय नहीं है।

घृणा न करने का अभिप्राय यह है कि किसी भी प्राणी को अपने से अथवा किसी से भी छोटा, हीन अथवा अछूत न माना जाए। सब मनुष्य बराबर हैं। कोई छोटा या बड़ा नहीं। साथ ही चाहे कोई कितना भी घटिया कार्य करे, वह मनुष्य तो रहता ही है। उसके सुधरने का अवसर रहता है और उसके सुधार के लिए यत्न करना ही चाहिए। गीता में तो यह भी कहा है कि विशेष परिस्थितियों में किसी का वध भी किया जा सकता है। वह वध घृणा का भाव नहीं भी हो सकता। वध तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल, जीवात्मा के हाथ से वह हथियार छीन लेना है, जिससे वह दूसरों का वध करता है। यह कर्म घृणायुक्त नहीं भी हो सकता। यह केवल सुधार के निमित्त भी हो सकता है। मनुष्योचित भावना प्रत्येक मनुष्य की दूसरे मनुष्य के प्रति होनी चाहिए। जब यह हो जाती है तब प्रत्येक मनुष्य में परमात्मा का वास समझा जाए।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ 7॥

अर्थ—जब ज्ञानवान् प्राणी को सब भूतों (प्राणियों) में आत्मा ही दिखाई देने लगता है, तब उसको न शोक होता है न मोह होता है।

ज्ञानवान् अर्थात् जो ऊपर के मंत्र के अनुसार सब प्राणियों में परमात्मा को और सब प्राणियों को परमात्मा में देखनेवाला हो जाता है, जब जिस भी कार्य, कल्पना अथवा सिद्धान्त में वह परमात्मा को देखता है तो उसे अपने समान ही सब-कुछ दिखाई देने लगता है। तब उसे किसी कर्म अथवा योजना की सफलता पर हर्ष, किसी योजना से मोह और उसके असफल होने पर शोक नहीं होता। न हर्ष, न शोक और न ही किसी के साथ मोह, न द्वेष होता है।

संक्षेप में इसका अभिप्राय यह है कि ज्ञानी असफलता पर शोक नहीं करते, सफलता पर प्रसन्न नहीं होते और किसी भी कार्य से उनको मोह नहीं होता।

यहाँ भी एक उदाहरण लिया जा सकता है। किसी धार्मिक व्यक्ति ने अथवा किसी विद्वान् व्यक्ति ने कोई विद्यालय आरम्भ किया है। वह विद्यालय सफल होता है। उस विद्यालय में से पढ़कर विद्यार्थी सफल हो रहे हैं। तब विद्यालय आरम्भ करनेवाले ज्ञानी पुरुष को प्रसन्न होने में कोई प्रयोजन नहीं। कारण यह कि परमात्मा सबमें कार्य कर रहा है—आरम्भ करनेवाले में भी और वहाँ से उत्तीर्ण हो सफल होनेवाले प्राणी में भी। परमात्मा भीतर बैठा सहायक हो रहा है।

यदि किसी दुर्घटनावश विद्यालय में कार्य बिगड़ जाता है तो विद्यालय आरम्भ करनेवाले को उससे शोक नहीं होना चाहिए। बिगड़ी वस्तु का अन्त होता ही है। और फिर अंत होने पर शोक नहीं होना चाहिए।

ज्ञानवान् व्यक्तियों के लिए सफलता-असफलता, कर्म में विकृति आ जाने पर क्रमशः हर्ष, शोक अथवा मोह नहीं होता। ज्ञानी मनुष्य सब परिस्थितियों में समभाव-युक्त रहते हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ 8॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089. 9143
GUR-P
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167891

अर्थ—वह (परमात्मा) सब स्थान पर पहुँचा हुआ, शुद्ध, बलवान्, शरीर-रहित, अक्षत (घायल न किया जाने योग्य), स्नायु से रहित, निर्मल, पाप से अबद्ध है। महान् ज्ञानवान् मनीषी (सर्वज्ञ और मनीषी) सबसे ऊपर (सर्वोत्कृष्ट), स्वयं ही प्रकट होनेवाला, जो कुछ जैसा है उसे वैसा ही प्रकट करनेवाला और अनादि प्रजाओं (जीवात्माओं) के लिए जो जैसा है वैसा ही उसके साथ व्यवहार करनेवाला है, अर्थात् न्यायकर्ता है।

इस मंत्र में परमात्मा के कुछ-एक गुणों का वर्णन है। सामान्य रूप में परमात्मा को निर्गुण कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि परमात्मा गुणहीन है। निर्गुण होने का अभिप्राय प्रकृति के तीन गुणों से निर्गुण होना है। सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों का समावेश परमात्मा में नहीं। यही इसके निर्गुण होने का अभिप्राय है।

यहाँ इस मंत्र में जो गुण वर्णन किये हैं, वे प्रकृति के सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों के अतिरिक्त हैं। इन गुणों का प्रकृति के तीन गुणों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

ये गुण हैं—(1) सर्वव्यापकता; (2) बल का स्रोत; (3) शरीर के बिना; शरीर मानने से परमात्मा की सीमा माननी पड़ेगी; (4) घायल न हो सकने वाला अर्थात् किसी रोग आदि से पीड़ित न होनेवाला। रोग भी शरीर का ही विकार है; (5) स्नायुरहित; स्नायु का अर्थ है नस-नाड़ियाँ; इनका भी शरीर से ही सम्बन्ध है; साथ ही इनकी आवश्यकता तब है जब प्राणी के शरीर में जीवात्मा की भाँति परमात्मा भी किसी सीमित स्थान में रहे; जब परमात्मा को सर्वव्यापक स्वीकार किया तो स्नायुओं की आवश्यकता नहीं रहती; (6) शुद्ध अर्थात् विकाररहित; अशुद्ध वह वस्तु होती है जिसमें विकार हो और उसके स्वरूप और उसमें के पदार्थ में परिवर्तन हो; परमात्मा को निर्विकार कहा जाता है; (7) यह पाप-कर्मों अथवा पापियों से सम्बन्ध नहीं रखता; पाप का अभिप्राय अनियमित कर्म है और पापी का अभिप्राय है जो अनियमित कार्य करता है। अभिप्राय यह है कि परमात्मा कभी अनियमित कर्म (ऋतों के विरुद्ध कर्म) नहीं करता; (8) वह कवि यानी परम ज्ञानवाला है, (9) मनीषी यानी ठीक और कल्याणकारी कल्पना अर्थात् योजना करनेवाला। उसकी योजनाएँ श्रेष्ठ होती हैं। परमात्मा सर्वज्ञ कहा जाता है, इस कारण उससे अधिक ज्ञान रखनेवाला अन्य कोई नहीं है; (10) सर्वज्ञ अर्थात् वह सब-कुछ जाननेवाला है। प्रत्येक गुण में सर्वोपरि है; (11) अनादि प्रजाओं से अभिप्राय जीवात्माओं से है। उनको जो जैसा है, वैसा ही ज्ञान देनेवाला है। वेदज्ञान सत्य है। यही इसका अभिप्राय है; (13) सबके साथ यथायोग्य व्यवहार करनेवाला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसका अभिप्राय है कि वह न्यायकर्ता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा को दयालु क्यों कहा है। दयाभाव न्यायकर्ता के अन्तर्गत ही है। जो दुष्ट को दण्ड देता है वह भले लोगों पर दया करता माना जाता है।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाᳬ रताः॥ 9॥

अर्थ—जो अविद्या की उपासना करते हैं, वे अन्धकार में जाते हैं।

जो विद्या में ही रत रहते हैं वे उससे भी अधिक अन्धकार में विचरते हैं।

हम यह बता चुके हैं वि ईशावास्योपनिषद् यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का नाम है। यहाँ उपनिषद् में और वेद के क्रम में अंतर आ गया है। वेद में यह मंत्र ४०वें अध्याय का बारहवाँ मंत्र है। उपनिषद् के मंत्र 9, 10, 11 अध्याय में के 12वें, 13वें तथा 14वें स्थान पर हैं। उपनिषत्कार ने ऐसा क्यों किया? यह बात विचारणीय है। इस पर भी यहाँ हम उपनिषद्-भाष्य लिख रहे हैं, इस कारण हम उपनिषद् का ही क्रम दे रहे हैं। उपनिषद्-क्रम के इस बदल के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे।

मंत्र में अविद्या का अभिप्राय उन पदार्थों का ज्ञान है जो सदा विद्यमान नहीं रहते। विश्व में केवल तीन पदार्थ हैं जो सदा विद्यमान रहते हैं अर्थात् जो अक्षर हैं। वे पदार्थ हैं परमात्मा, प्रकृति तथा जीवात्मा। इन तीन के अतिरिक्त जो भी पदार्थ हैं, वे क्षरित होनेवाले हैं और उनका ज्ञान अविद्या कहाता है।

अतएव विद्या उन पदार्थों का ज्ञान है जो सदैव विद्यमान रहते हैं। अभिप्राय यह कि परमात्मा, प्रकृति और जीवात्माओं के विषय के ज्ञान को विद्या कहा है।

मंत्र में कहा है कि जो नाशवान् वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे अन्धकार अर्थात् अज्ञानता में फँसे रहते हैं। उपासना करने का अभिप्राय है समीप बैठना अर्थात् उन पदार्थों के ज्ञान में लगे रहना।

साथ ही यह भी कहा है कि जो केवल अक्षर पदार्थों के ज्ञान में लीन रहते हैं वे उससे भी अधिक अज्ञान में रहते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ 10॥

अर्थ—सुनते हैं कि विद्वान् लोग व्याख्या से विद्या का फल दूसरा कहते थे और अविद्या का फल दूसरा कहते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुनते हैं कि विद्वान् लोग' का अभिप्राय यह है कि 'जो पूर्व-कल्प के ऋषि थे' अथवा जो इस कल्प में सबसे पहले (अमैथुनीय सृष्टि में) उत्पन्न हुए, वे विद्या और अविद्या का फल पृथक्-पृथक् बताते हैं।

विद्या और अविद्या का फल भिन्न-भिन्न है, यह अगले मंत्र में स्पष्ट किया है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥ 11॥

अर्थ—जो विद्या और अविद्या, दोनों को एक-साथ जानता है, वह अविद्या के ज्ञान से इस मर्त्यलोक को पार करके विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है।

'मृत्यु को पार करके' का अभिप्राय है कि इस मर्त्यलोक को सफलतापूर्वक, सुखपूर्वक तथा बिना किसी प्रकार का पाप-कर्म किये पार कर लेता है, अर्थात् ऐसे मनुष्य इस संसार में सुखपूर्वक रहते हुए शरीर छोड़ने पर जन्म-मरण के बंधन से छूट जाते हैं।

इसमें भी शर्त यह लगाई है कि विद्या और अविद्या को साथ-साथ जाने और उसमें प्रवेश करे अर्थात् तदनुसार व्यवहार करे।

इस संसार में रहते हुए, बिना सांसारिक बातों का ज्ञान प्राप्त किये, तो जीना कठिन हो जाएगा। इस कारण संसार की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त कर और फिर परमात्मा, प्रकृति तथा जीवात्मा का ज्ञान रखता हुआ मनुष्य इस संसार में धर्मपूर्वक व्यवहार करे, तब वह शरीर छोड़ने पर जन्म-मरण से छूट जाएगा।

वेद तथा उपनिषद् में इस कार्य-जगत् को ही इससे मुक्ति पाने का साधन बताया है। वेद इस जगत् को मिथ्या, अध्यास अथवा भ्रम नहीं मानता। वह इसे सत्य मानता है और वैसा ही उपनिषद् भी मानता है। यह सत्य जगत् मोक्ष का द्वार है। परन्तु इसमें जीने का ढंग वेद तथा उपनिषद्-मंत्र (ईशा०-2) में बता आए हैं। वहाँ कहा है कि कर्म करते हुए तुम पर कर्म का लेप न हो।

यह कैसे हो सकेगा? यह एक पृथक् प्रश्न है। यजुर्वेद में जिसका यह उपनिषद् छोटा-सा अध्याय मात्र है, स्पष्ट रूप में कहा है कि यज्ञरूप जीवन व्यतीत करोगे तो कर्मों का लेप नहीं होगा।

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः॥ 12॥

अर्थ—जो असम्भूति (अव्यक्त प्रकृति) की 'उपासना (ज्ञान प्राप्त)' करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं वे गहन अन्धकार में विचरते हैं और जो सम्भूति—व्यक्त प्रकृति में ही रहते हैं वे और भी अधिक अन्धकार में रत रहते हैं।

मंत्र (ईशा० 9 तथा 12) की रचना लगभग समान है, परन्तु विषय में अन्तर है। जहाँ मंत्र 9 में विद्या और अविद्या की ज्ञान-प्राप्ति से समानता तथा अन्तर बताया है, यहाँ इस मंत्र में सम्भूति और असम्भूति की ज्ञान-प्राप्ति से तुलना की गई है।

सम्भूति का अर्थ है प्रकृति का वह रूप जिसमें जगत् के पदार्थ बने हैं। यह वेद (ऋ० 1-163-1) में माना गया है कि रचना से पूर्व परमात्मा का तेज, जिसे अश्वाग्नि: माना है प्रकट होता है। यह ईश्वर की इच्छामात्र से ही होता है। यह तेज घोर शोर मचाता हुआ बहुत तीव्र गति से अन्तरिक्ष में फैल जाता है। तब यह साम्यावस्था में परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाता है। इससे प्रत्येक परमाणु में उपस्थित त्रिगुणात्मक शक्ति का आविर्भाव होता है। इसे (ऋग्वेद 1-163-2) में इन्द्र कहा है। इससे कार्य-जगत् की रचना आरम्भ होती है।

तेज के परमाणुओं पर लगाम लगने से पूर्व की अवस्था असम्भूति कहाती है और परमाणु पर तेज के लगाम बन परमाणु में शक्ति के बहिर्मुख हो जाने से जो निर्माण-कार्य होता है वह सम्भूति है अर्थात् प्रकृति की असाम्यावस्था।

मंत्र में कहा है कि जो प्रकृति की केवल साम्यावस्था का ज्ञान प्राप्त करते हैं वे अन्धकार में जाते हैं और जो प्रकृति की कार्य-जगत् के रूप में उपासना (अर्थात् उसका ज्ञान प्राप्त) करते हैं वे तो उससे भी अधिक अन्धकार में रहते हैं।

प्रकृति के दो रूप हैं—एक अव्यक्त और दूसरा व्यक्त। इसे सत् तथा असत् भी कहते हैं। इन दोनों रूपों का पृथक्-पृथक् ज्ञान है। जो लोग केवल एक ही रूप का ज्ञान प्राप्त करते हैं वे अन्धकार में विचरते हैं अर्थात् अज्ञान में पड़े रहते हैं।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे॥ 13॥

अर्थ—कार्य-जगत् के ज्ञान का फल दूसरा है और साम्यावस्था में प्रकृति के ज्ञान का फल दूसरा है। ऐसा ज्ञानवान् लोगों से सुना है जिन्होंने इस विषय की व्याख्या की है।

मूल प्रकृति से कार्य-जगत् के निर्माण के विषय में वेद में बहुत व्याख्या से वर्णन किया गया है। साथ ही कार्य-जगत् के पदार्थों के विषय में भी वेद में कहा है। ऋग्वेद इसकी ही व्याख्या है। अति संक्षेप में निर्माण की प्रक्रिया इस प्रकार कही जा सकती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल प्रकृति—असाम्यावस्था में प्रकृति (महत्)—अहंकार (तीन प्रकार के परमाणुओं के निबन्धन)—परिमण्डल (सूक्ष्म भूत)—अणु (मरुत)—चराचर जगत्।

मंत्र में कहा है कि मूल प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने का एक फल है और कार्य-जगत् (महत्, अहंकार, अणु एवं चराचर जगत्) के ज्ञान का फल दूसरा है।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयः सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥ 14॥

अर्थ—जो मूल प्रकृति और कार्य-जगत् को साथ-साथ जानता है वह कार्य-जगत् के ज्ञान से मृत्यु को पार कर मूल प्रकृति के द्वारा अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि असम्भूति अर्थात् मूल प्रकृति, जिसे वेद में सत्-असत् अर्थात् अव्यक्त-व्यक्त दोनों नहीं माना, उससे अभिप्राय क्या है?

सत् और असत् का अभिप्राय व्यक्त-अव्यक्त से है। प्रायः जहाँ प्रकृति के दोनों रूपों का साथ-साथ वर्णन करना होता है वहाँ सत्-असत् कहकर वर्णन किया जाता है। एक वेदमंत्र में कहा है—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं... *(ऋ० 10-129-1)*

अर्थात् आदि में यहाँ न सत् था न असत् था—

यहाँ सत्-असत् से अभिप्राय अव्यक्त और व्यक्त है। तो क्या उस समय अव्यक्त प्रकृति भी नहीं थी? ऐसा वेद का आशय नहीं है। तीन अव्यक्त तो थे, यानी परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। इस कारण वेद का अभिप्राय उस 'अव्यक्त' से है जिसे महत् और अहंकार कहते हैं। वे भी उस समय नहीं थे।

इसी प्रकार इस उपनिषद् में कहा है कि सम्भूति के ज्ञान से जगत् पार कर असम्भूति के ज्ञान से जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त होती है।

सम्भूति तो कार्य-जगत् है। यह कार्य-जगत् भूतों के संयोग से बना है। यही सम्भूति है। इसके ज्ञान से जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस मंत्र में सम्भूति का अर्थ कार्य-जगत् है और इसके ज्ञान से मनुष्य का जीवन सरल हो जाता है। असम्भूति मूल प्रकृति है। उसके ज्ञान से मनुष्य जन्म-मरण से मुक्ति पा सकता है।

प्रश्न यह है कि प्रकृति के ज्ञान से मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकेगी?

उपनिषत्कार का और वेद का अभिप्राय यह है कि प्रकृति से यह जगत् बना है। मुण्डक उपनिषद् में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

(मु० उ० 1-1-6)

अर्थ—वह जो अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षु-श्रोत्रादि-हीन है; अपाणिपाद, नित्य, विभु, सर्वगत अत्यन्त सूक्ष्म और अव्यय है....

ये प्रकृति के लक्षण हैं। तो इससे कार्य-जगत् कैसे बना?

इसके ज्ञान की लालसा होती है। बस यह आरम्भ है परमात्मा के ज्ञान का।

मूल प्रकृति का ज्ञान होने से उस अचल सूक्ष्म से इस स्थूल चलायमान जगत् का ज्ञान हो जाता है और तब इसके बनानेवाले का ज्ञान होता है। इससे मोक्ष की प्राप्त होती है।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥ 15॥

अर्थ—चमकदार ढकने से सत्य का मुख ढका हुआ है। तत्त्व (परमात्मा) को देखने के लिए ढाँपनेवाले पर्दे को हटा दो।

उपनिषद् का मंत्र 15 यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का 17वाँ मंत्र है, जबकि यजुर्वेद का मंत्र 15, उपनिषद् में मंत्र 17 है तथा यजुर्वेद का मंत्र 16 उपनिषद् में मंत्र 18वाँ है।

यह क्रम उपनिषत्कार ने बदला क्यों है? इसमें हमारा मत है कि उसको इस क्रम से विषय की संगति अधिक ठीक प्रतीत हुई है। वेद में मंत्रों का क्रम बाँधने वाले को वह क्रम जो वेद में है, अधिक युक्त प्रतीत हुआ होगा। इसमें हम अपना मत प्रकट किये बिना उपनिषद् का क्रम ही ले रहे हैं। कारण यह कि हम उपनिषद् का भाष्य लिख रहे हैं।

इस मंत्र (ईशा०-15) की संगति ऊपर के मंत्र संख्या 12, 13, 14 से इस प्रकार बैठती है कि जब उन मंत्रों में बता दिया कि कार्य-जगत् के ज्ञान से मनुष्य का जीवन सुलभ हो जाता है, वहाँ यह भी बताया है कि मूल प्रकृति के ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है। इस मोक्ष-प्राप्ति की विधि यह है—मूल प्रकृति (उपनिषद् 1-1-6 के प्रमाण से) अचल, अदृश्य, अतिसूक्ष्म इत्यादि गुणवाली है। तब स्वाभाविक रूप में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि कार्य-जगत् कैसे बन गया? उस जिज्ञासा का परिणाम यह होता है कि इस कार्य-जगत् के निर्माता का ज्ञान होता है। और जो ज्ञान होता है, वह इस (ईशा०-15) में वर्णन कर दिया है। कहा है कि इस प्रकाशमान जगत् के भीतर सत्य का मुख ढका हुआ है। सत्य का अभिप्राय परमात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार मंत्र का अर्थ यह बनेगा कि इस जगत् के भीतर परमात्मा का कार्य छुपा हुआ है। कार्य-जगत् के प्रत्येक कण में परमात्मा की शक्ति वैश्वानर अग्नि के रूप में उपस्थित है। यह वेद में कहा है कि परमात्मा का तेज जिसे अर्वा अथवा अश्व कहा जाता है, वह प्रकृति के प्रत्येक परमाणु पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाता है और उसके भीतर की त्रिगुणात्मक शक्ति को बहिर्मुख कर देता है। वह तेज परमाणु पर जब तक आरूढ़ रहता है वैश्वानर अग्नि कहाता है और कार्य-जगत् बना रहता है।

अतएव कार्य-जगत् के प्रत्येक कण में वैश्वानर अग्नि अर्थात् परमात्मा की शक्ति है। वह शक्ति परमाणुओं को कार्यरत किये हुए है। कार्य-जगत् है सम्भूति और परमाणु बिना ईश्वरीय शक्ति के है असम्भूति। असम्भूति से सम्भूति ईश्वरीय शक्ति द्वारा बनती है। यह ज्ञान है जिससे मोक्ष का मार्ग खुल जाता है।

अतः इस मंत्र (ईशा०-15) में कहा है कि कार्य-जगत् के आवरण के नीचे छुपा हुआ है असम्भूति। परमात्मा के तेज पर से आवरण को उतारकर इन दोनों के दर्शन करो और जानो कि किस प्रकार परमात्मा ने इस प्रकाशमान जगत् की रचना की है।

इस ज्ञान से मोक्ष-प्राप्ति में सहायता मिलेगी।

यहाँ इतना और बता देना उचित रहेगा कि उपनिषद् के मंत्र 15 के स्थान पर वेदमंत्र-संख्या 17 है और दोनों में कुछ अन्तर भी है। उपनिषद् ईशा० 15 का अर्थ हमने ऊपर बताया है और यजुर्वेद में मंत्र इस प्रकार है—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्। ओं खं ब्रह्म॥

(यजु० 40-17)

इस मंत्र का अर्थ है—प्रकाशमान जगत् के भीतर परमात्मा है। ऊपर से उसको ढाँपे हुए है जगत् का रूप-रंग। इसके भीतर देखने पर परमात्मा का दर्शन होता है।

यहाँ तक मंत्र वैसा ही है जैसा उपनिषद् में है। आगे कहा है—

जो प्रकाशमान आवरण से ढका हुआ है वह ब्रह्म है जो व्योम में व्यापक है।

तत्त्व की बात यह है कि यह जगत् जो हम आँखों से देख रहे हैं वह तो ढका हुआ है। वास्तविक पदार्थ ब्रह्म इसमें छुपा हुआ है। ब्रह्म से अभिप्राय तीनों अक्षर हैं।

ऊपर कह आए हैं कि जो सदा विद्यमान पदार्थ हैं, उनका ज्ञान प्राप्त करने से मोक्ष प्राप्त होता है। वेद के अनुसार सदा विद्यमान अर्थात् अक्षर-पदार्थ तीन हैं। वे कार्य-जगत् की चमक-दमक में छुपे हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह।
तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ
पुरुषः सोऽहमस्मि॥ 16॥

अर्थ—हे पुष्टिकारक एक (अकेले) ही नियामक अर्थात् नियंत्रण करनेवाले सूर्य, प्रजापति, किरण-संग्रह के देनेवाले, यह जो तेरा तेजोमय स्वरूप, परम कल्याणमय स्वरूप है, वह तू हटा ले। मैं देखता हूँ जो यह पुरुष (आत्मा) है वह मैं हूँ।

उपनिषद् का यह मन्त्र (ईशा०-16) यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपनिषत्कार यहाँ कुछ अपनी ओर से बताना चाहता है, जो उसे वेदमन्त्रों में मिला नहीं। वह उसके इस शब्द से प्रकट होता है—

'योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि॥'

अर्थ—जो उसमें बसा हुआ पुरुष है, वह मैं हूँ।

इससे पूर्व के मन्त्र में वेद में तो यह कहा है कि यह व्योम में व्यापक ब्रह्म है। इससे उपनिषत्कार को सन्तोष नहीं हुआ। वह यह बताना चाहता है कि जो ब्रह्म सर्वव्यापक है और जगत् की चमक-दमक से ढका हुआ है, वह मनुष्य का जीवात्मा भी है।

परमात्मा को जीवात्मा मानना वेदमत नहीं है। परमात्मा पूर्ण जगत् और उससे भी परे अरचित स्थान में है, परन्तु जीवात्मा कदापि सर्वव्यापक नहीं है।

वेद में परमात्मा-तत्त्व से जीवात्मा-तत्त्व को पृथक् माना गया है। अतः हमारा स्पष्ट मत है कि यह वेद का कथन नहीं है कि वह (परमात्मा) मनुष्य का जीवात्मा भी है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओं क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर॥ 17॥

अर्थ—हे क्रतु (कर्म करनेवाले जीव)! जब वायु (शरीर को गठित करने वाली शक्ति), अनिल (अनादि वायु जो प्राणरूप है) में मिल जाती है तब शरीर भस्म हो जाता है। उस समय तू अपने कर्मों का स्मरण कर। तू परमात्मा का स्मरण कर।

इस मन्त्र में दूसरी पंक्ति में वेदमन्त्र से अन्तर है। वेद में वह पंक्ति इस प्रकार है—

ओं क्रतो स्मर, क्लिबे स्मर, कृतं स्मर—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अर्थ है, हे कर्म करनेवाले जीवात्मा! जब वायु और प्राण-शक्ति शरीर छोड़ जाती है और शरीर भस्म किया जाता है तब तू अपने कर्मों को स्मरण कर और ओं (परमात्मा) की शक्ति को स्मरण कर।

ऊपर जो प्रसंग है कि अक्षर अनादि पदार्थों के ज्ञान से मोक्ष मिलता है, उसी में यह कहा है कि प्रयाणकाल में परमात्मा का स्मरण कर और अपने कर्मों का स्मरण कर। दोनों के अर्थ में अन्तर नहीं है।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥ 18॥

अर्थ—हे अग्निस्वरूप परमात्मा! हमें कर्मफल भोगने के लिए श्रेष्ठ मार्ग पर ले चलो। हे देव! तुम समस्त ज्ञान को जाननेवाले हो। जो पाप के मार्ग हैं, उनसे हमको पृथक् रखो। हम तुमको बार-बार नमस्कार करते हैं।

उपनिषद् का यह अन्तिम मन्त्र है। इसी कारण यह मन्त्र ही उपनिषद् का उपसंहार है। यजुर्वेद में यह चालीसवें अध्याय का 16वाँ मन्त्र है।

उपसंहार

हमारी धारणा है कि वेद के छन्द तो ईश्वरीय देन हैं, इसी कारण इनको अपौरुषेय कहा है। परन्तु इन छन्दों को ऋषियों ने वर्तमान भाषा दी है। वेदमंत्रों का क्रम, उनको सूक्तों में बाँधना तो पीछे मनुष्यों ने किया है। वे मनुष्य भी बहुत विद्वान् रहे हैं। इस पर भी थे वे मनुष्य ही। न तो वे अमैथुनीय सृष्टि के ऋषि थे और न ही निर्भ्रान्त व्यक्ति थे। अतः मन्त्रों पर देवता, मन्त्रों का सूक्तों में बाँटना और साथ ही उनका क्रम मनुष्यकृत होने से अनुपयुक्त भी हो सकता है। यही ईशावास्योपनिषद् के प्रवक्ता ने प्रकट किया है।

वैसे उपनिषद् में मंत्रों का क्रम युक्तियुक्त है।

परन्तु उपनिषद् का मन्त्र 16 अनावश्यक है और मिथ्या भाव प्रकट करता है। वेदमन्त्र अधिक श्रेष्ठ भाव प्रकट करते हैं।

अतः वेद में भाव अधिक युक्तियुक्त ढंग से वर्णन किये गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केनोपनिषद्

प्राक्कथन

यह उपनिषद् सामवेदीय **तलवकार** ब्राह्मण से लिया गया है। इसका वास्तविक नाम तलवकार उपनिषद् है। यह केन के नाम से इस कारण विख्यात है कि इस उपनिषद् का पहला शब्द 'केन' है। 'केन' का अर्थ है 'किससे'। अभिप्राय है किससे यह सृष्टि-रचना हुई है ?

सामवेद ब्रह्म की स्तुति का वेद माना जाता है। स्तुति से हमारा अभिप्राय है गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन। हमारे विचार से किसी पदार्थ के गुण, कर्म, स्वभाव को बार-बार हृदयंगम करना ही उसकी पूजा इत्यादि करना है। पूजा का अर्थ प्रशंसा करना भी है। किसी के सत्य गुण का कथन ही उसकी पूजा है और गुणों को जानना (स्मरण करना) स्तुति है।

अतः यह उपनिषद् ब्रह्म की स्तुति (गुणगान) में है।

हम वेद की चार संहिताओं को ही अपौरुषेय ज्ञान के ग्रन्थ मानते हैं। उनमें भी, हमने बताया है कि मन्त्रपाठमात्र ही अपौरुषेय है। मन्त्रों का सूक्तों में विभाजन, मन्त्रों के देवता का निश्चय करना और मन्त्रों का सूक्तों में क्रम अपौरुषेय नहीं। यह मनुष्यों ने किया है और इसमें भूल भी हो सकती है।

यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का और ईशावास्योपनिषद् के मन्त्रों का क्रम बदला गया है। इससे वेद के भाव में अन्तर नहीं आया। ईशावास्योपनिषद् के संकलनकर्त्ता ने मन्त्रों का क्रम बदला है। क्यों ? कदाचित् उसे वेद के संकलनकर्त्ता का क्रम उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ होगा। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि उसका कथन भी सत्य हो।

इसी प्रकार यह उपनिषद् भी वेदमत के अनुकूल न हो, यह सम्भव है। हम समझते हैं कि कई स्थानों पर उपनिषत्कार वेद के विपरीत कह गया है। यथास्थान हम अपना भाव प्रमाण तथा युक्ति सहित उपस्थित करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति पाठ

ओम् आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥ ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

यह शान्ति-पाठ भी तलवकार ब्राह्मण का ही पाठ है। यह पाठ वेदमन्त्रों में नहीं है।

अर्थ—मेरे अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट हों। यह जो उपनिषद् में कहा है, वह ब्रह्म है। ब्रह्म मेरा निराकरण न करे और मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ। मैं ब्रह्म से विमुख न होऊँ और ब्रह्म मेरा तिरस्कार न करे। उपनिषद् में जो धर्म कहा है वह मुझे लगे, मुझे लगे।

इस शान्ति-पाठ में ब्रह्म से अभिप्राय परमात्मा ही है। उपनिषत्कार ने आत्मा (जीवात्मा) को पृथक् से कहा है। वह कहता है कि मैं ब्रह्म का तिरस्कार न करूँ और ब्रह्म मेरा तिरस्कार न करे।

दूसरी बात जो यहाँ ध्यान देने योग्य है, वह यह है कि अंगों की बात पृथक् कही है और आत्मा की बात पृथक् कही है।

अंगों से अभिप्राय है हाथ, पाँव, आँतें और शरीर के अन्य भाग जो रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा इत्यादि से निर्मित हैं। उन सब की पुष्टि के लिए इच्छा व्यक्त की है। प्राण, इन्द्रियाँ और मन के लिए पृथक् इच्छा की गई है और फिर जो इच्छा इनके लिए की गई है, वह आत्मा के लिए भी की गई है।

यह भी कहा है कि उपनिषद् में जिसका वर्णन किया गया है वह ब्रह्म है।

हमारा मत है कि उपनिषत्कार शरीर, प्राण, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा की पृथक्-पृथक् गणना करने से उनको एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् मान रहा है। तो क्या ये सब ब्रह्म हैं? यह तभी कहा जा सकता है जब हम तीन प्रकार का ब्रह्म मानें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति॥ 1॥

अर्थ—यह मन किससे इच्छा किया हुआ और प्रेरित किया हुआ गिरता (पतन के मार्ग पर जाता) है (विषयों में फँस जाता है)? किससे युक्त होकर प्रथम (प्रधान) प्राण चलता है? किससे इच्छा की हुई वाणी यह बोलता है? किस देव की इच्छा से चक्षु, श्रोत्र इत्यादि इन्द्रियाँ (इस शरीर से) जुड़ती हैं?

यह मन्त्र प्रश्नसूचक है। इसमें भिन्न-भिन्न स्रोतों और प्रेरणाओं से प्राप्त पदार्थों के विषय में पूछा गया है, अतः किसी सरलचित्त व्यक्ति का ही यह प्रश्न प्रतीत होता है। वैसे इन सब का सामूहिक प्रभाव शरीर का जीवन है। प्रश्न पूछनेवाले का आशय यह प्रतीत होता है कि यह जीवन किसके कारण निर्मित हुआ है। प्रश्नकर्त्ता जीवन का विश्लेषण या तो कर नहीं सका अथवा उसने उत्तर देनेवाले पर यह कार्य छोड़ दिया है।

उदाहरण के रूप में मन पतित किसकी प्रेरणा से होता है? यह वह नहीं हो सकता जो प्रथम प्राण चलानेवाला है।

जिस व्यक्ति को प्रारम्भिक ज्ञान भी होगा, वह इतना तो अवश्य जानता होगा कि मन पतित होता है कामनाओं से प्रेरित होकर। कामना होती है संसार के सुखद, स्वादिष्ट और मनोरंजक विषयों की, परन्तु (प्रथम) मुख्य प्राण तो परमात्मा की प्रेरणा से शरीर में कार्य करता है। दोनों का स्रोत एक नहीं। इससे दोनों को साथ-साथ पूछनेवाले के मन में या तो विभ्रम है अथवा वह अभी प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं रखता।

इसी प्रकार शरीर में जीवात्मा की प्रेरणा से वाणी बोलती है। यह परमात्मा की प्रेरणा से नहीं बोलती। यह कभी असत्य भाषण भी करने लगती है। अतः यह उसकी प्रेरणा से नहीं बोलती जिससे प्रथम (मुख्य) प्राण चलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि प्रश्नकर्त्ता विभिन्न स्रोतों की बात एक ही श्वास में कह रहा है। या तो यह स्थानाभाव के कारण किया गया है अथवा प्रश्न इस प्रकार किया गया है मानो कोई बालक पूछ रहा हो।

बात उत्तर में स्पष्ट होनी चाहिए। यह हम आगे चलकर देखेंगे।

इस मन्त्र में शब्द है 'क उ देवो युनक्ति'। भाष्यकार इसका अर्थ करते हैं 'कौन प्रेरित करता है?' हम समझते हैं इसका अर्थ है 'नियुक्त करता है', अर्थात् जोड़ता है, अर्थात् शरीर में मन-इन्द्रियाँ इत्यादि को एक स्थान पर एकत्रित करनेवाला कौन है?

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचः स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ 2॥

अर्थ—श्रोत्र का श्रोत्र (सुनने की शक्ति), मन का मन (मनन करने की शक्ति), वाणी का वाणी (बोलने की शक्ति) जो है वही प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु है। जो धीर पुरुष ऐसा जानते हैं वे अमृतलोक (मोक्षधाम) को जाते हैं।

यदि तो कान का कान, आँख की आँख, मन का मन इत्यादि का अर्थ किया जाए—कान की शक्ति, मन की शक्ति इत्यादि, तो अर्थ बनेंगे कि इन शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करने से अर्थात् यह जानने से कि कान, चक्षु, मन, वाणी इत्यादि में जो प्राण-शक्ति कार्य करती है वह परमात्मा की दी हुई है तो मोक्षधाम प्राप्त होता है। यह समझने के लिए इस प्राण-शक्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इस विषय में एक वेदमन्त्र इस प्रकार है—

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्॥

(ऋ० 1-164-1)

इस प्राणी में तीन वस्तुएँ कही हैं। एक है प्रकृति का बना हुआ शरीर; प्रकृति परिणामी है इस कारण बूढ़ी हो जानेवाली है। दूसरा जीवात्मा है जो प्रकृति का भोग करता है। तीसरा परमात्मा जो ऊपर के दोनों तत्त्वों का पालन और रक्षा करता हुआ देखता है। वह यह सब-कुछ करता है सात पुत्रों की सहायता से। सात पुत्र प्राण कहे जाते हैं।

ब्रह्मसूत्र में भी कहा है—

सप्त गतेर्विशेषितत्वाच्च॥ *(ब्र०सू० 2-4-5)*

(और इस प्राण की) सात विशेष गतियाँ होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाँच ज्ञानेन्द्रियों (श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और त्वचा) के पाँच प्राण, पाँचों कर्मेन्द्रियों (हाथ, पाँव, वाक्, गुदा और लिंग) का एक प्राण और सातवाँ श्रेष्ठ प्राण। ये सात प्राण हैं। उपनिषत्कार इस मंत्र में श्रोत्र का श्रोत्र से अभिप्राय 'श्रोत्र में कार्य करने की शक्ति' अर्थात् परमात्मा ले रहा है। परन्तु हमारा कहना है कि प्राण परमात्मा नहीं है। इसको जान लेने से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

यहाँ उपनिषत्कार की भाषा ढीली हो गई है जिससे शक्ति और शक्तिमान् में भेद स्पष्ट नहीं हो रहा। प्राण जो इन्द्रियों और मन में कार्य करते हैं वे परमात्मा की शक्ति तो हैं, परन्तु वे परमात्मा नहीं हैं। यदि इन्द्रियों में शक्ति को ही परमात्मा मानेंगे तो उस शक्ति से होनेवाले कार्य भी परमात्मा के किये माने जाएँगे। हम वाणी से मिथ्या भाषण भी कर सकते हैं। परमात्मा ऐसा नहीं करता।

वेद में परमात्मा के विषय में वर्णन करते हुए कहा है—

शुद्धमपापविद्धम्॥ *यजुः 40-8*

अर्थ—परमात्मा शुद्ध, पवित्र और पाप से असम्बद्ध है।

ब्रह्मसूत्र में कहा है—

इतरपरामर्शात्स इति चेन्नासंभवात्॥

(ब्र० सू० 1-3-18)

इतर (जीवात्मा) के परामर्श से उस (परमात्मा) की शक्ति का प्रयोग होता है। यदि कहें कि नहीं तो यह सम्भव न होने से (अर्थात् सम्भव होने से)।

यदि यह मानें कि परमात्मा की शक्ति जो मनुष्य की इन्द्रियों में कार्य करती है, वह ही परमात्मा है तो मनुष्य जितने पाप-कर्म करता है वे परमात्मा द्वारा किये ही माने जाएँगे।

यह परमात्मा की शक्ति मनुष्य में ऐसे ही कार्य करती है जैसे किसी मोटरगाड़ी में पैट्रोल कार्य करता है। पैट्रोल तो पैट्रोल के कारखाने से आता है और सबकी मोटरगाड़ियों में, साधु-सन्तों को ले-जानेवाली गाड़ी में भी और चोर-ठगों को ले-जानेवाली गाड़ी में भी भरा जाता है। उस मोटर पर बैठकर व्यक्ति कार्य तो मोटर से ही करते हैं परन्तु अपने-अपने कर्म के वे स्वयं उत्तरदायी होते हैं। पैट्रोल का स्वामी पैट्रोल सबको दे रहा है। यह इसी कारण हैं क्योंकि पैट्रोल और पैट्रोल बेचनेवाले भिन्न-भिन्न हैं।

यही बात श्रोत्र, चक्षु, मन इत्यादि की है। श्रोत्र में सुनने की शक्ति, चक्षुओं में देखने की शक्ति परमात्मा की है, परन्तु वह शक्ति परमात्मा नहीं है। न ही श्रोत्र, मन, चक्षु इत्यादि द्वारा किये कर्मों का फल परमात्मा को मिलता है। चक्षु का स्वामी मनुष्य है। चक्षु में देखने की शक्ति और उस शक्ति को देनेवाला पृथक्-पृथक् हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण यह जान लेने से कि आँख में देखने की शक्ति परमात्मा की है, कोई अमृतलोक (मोक्षधाम) को प्राप्त नहीं होगा।

हम समझते हैं कि उपनिषत्कार का यह अभिप्राय भी नहीं है। आँख, कान, मन इत्यादि की शक्ति के स्वामी को जान लेने से मनुष्य ज्ञानवान् होता है, परन्तु केवल ज्ञान लेना ही पर्याप्त नहीं, कुछ अन्य भी करना चाहिए।

इसी कारण, हमारा मत है कि उपनिषत्कार की भाषा ढीली है। इस संसार का ज्ञान प्राप्त कर उसमें अपने व्यवहार को ठीक करने से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। उपनिषद् में तो यही कहा है कि जो श्रोत्र का श्रोत्र (सुनने की शक्ति), मन का मन (मनन करने की शक्ति) है, वही प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु है।

इसके उपरान्त यह समझ लेना चाहिए कि 'जो ऐसा जाननेवाला है' वह ही मोक्षधाम जाने के योग्य हो सकता है।

आगे उपनिषत्कार कहता है कि ऐसा धीर मनुष्य मरने के उपरान्त मोक्षधाम को जाता है।

यहाँ अभिप्राय यह है कि ऐसे धीर पुरुष को इतना जानने के उपरान्त व्यवहार में भी तदनुसार लाना पड़ता है, तभी मोक्षधाम को जाने की योग्यता को प्राप्त कर सकता है।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे॥ 3॥

अर्थ—वहाँ न चक्षु जाता है, न वाणी जाती है। मन वहाँ नहीं जाता। कोई किस प्रकार इसका उपदेश (व्याख्यान) करे? हम नहीं जानते, न ही समझते हैं। क्योंकि वह जाने हुए से विलक्षण है। न जाने हुए से भी भिन्न है। ऐसा हमने पूर्व-पुरुषों से सुना है जो हमें बता गए हैं।

उपनिषत्कार उस अमृतलोक का वर्णन करने लगा है। पूर्वमन्त्र में उसने कहा है कि जो जान जाता है कि चक्षु की देखने की शक्ति किसकी है इत्यादि, वह मरने पर अमृतलोक को जाता है, और यहाँ कहा है कि उस अमृतलोक में आँख, कान, मन इत्यादि नहीं जाते।

यहाँ भी कुछ ऐसा कहा गया है जो स्पष्ट नहीं है। आँख-कान का अभिप्राय वे गोलक भी हैं जिन्हें हम शरीर का अंग समझते हैं। उपनिषत्कार ने स्वयं कहा है कि श्रोत्र का अर्थ सुनने की शक्ति, मन का अर्थात् मनन करने की शक्ति है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि श्रोत्र और श्रवण करने की शक्ति भिन्न-भिन्न हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रोत्र, चक्षु इत्यादि तो शरीर का अंग हैं। वे मरने के समय यहाँ भस्म हो जाते हैं। ईशावास्योपनिषद् में कहा है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तः शरीरम्। *(ईशा० 17)*

अर्थ—वायु अमृत अनिल को प्राप्त होती है और शरीर भस्म हो जाता है।

वायु है प्राण, जिसे इस उपनिषत्कार ने श्रोत्र का श्रोत्र कहा है, मन का मन कहा है इत्यादि। और अनिल है ईश्वर की वह शक्ति जो वस्तुओं में संगठन उत्पन्न किये हुए है। अर्थात् शरीर के ये पाँच प्राण परमात्मा की शक्ति में लीन हो जाते हैं, और शरीर के गोलक शरीर के साथ भस्म हो जाते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि ये गोलक उस अमृत में जाकर नहीं मिलते, प्राण ही अमृत में जाकर मिल जाते हैं। परन्तु अमृत का अर्थ परमात्मा नहीं है। यह परमात्मा की शक्ति है। शक्ति शक्तिमान् से भिन्न है। यह हम पूर्व-मंत्र की विवेचना में बता चुके हैं। अनिल और वायु जो परमात्मा की शक्तियाँ हैं, वे परमात्मा नहीं हैं। और जो उस अमृत-शक्ति में जाकर नहीं मिलते वे शरीर के गोलक हैं। वे यहीं भस्म हो जाते हैं।

ब्रह्मसूत्रों में इस बात को भिन्न प्रकार से समझाया गया है। वहाँ कहा है—

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्॥ 1॥
मुक्तः प्रतिज्ञानात्॥ 2॥
आत्मा प्रकरणात्॥ 3॥ *(ब्र०सू० 4-4-1, 2, 3)*

इनका अर्थ है—मोक्ष (प्राप्त) होने पर वह (जीवात्मा) अपने निर्मल रूप में प्रकट होता है, शास्त्र-वचन से।

वह (जीव) मुक्त कहा जाता है।

प्रकरण के विचार से यहाँ जीवात्मा से अभिप्राय है।

इन तीनों सूत्रों का अभिप्राय यह बनता है कि जब जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करता है तो जीवात्मा सर्वथा स्वच्छ रूप में होता है।

आगे कहा है परमात्मा भी निर्मल है और मोक्षावस्था में आत्मा भी निर्मल हो जाता है। आगे कहा है—

ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः॥ *(ब्र०सू० 4-4-5)*

अर्थ—ब्रह्म (परमात्मा) से सामीप्य होने से; ऐसा जैमिनि ऋषि का कहना है।

अभिप्राय यह है कि मोक्षावस्था में जीवात्मा और परमात्मा समीप-समीप और समरूप (निर्मल) होने से एक ही प्रतीत होते हैं। जीवात्मा आनन्दमय हो जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु सन्देह किया जाता है कि वहाँ न इन्द्रियाँ हैं, न मन है, तो फिर जीवात्मा आनन्दमय कैसे हो जाता है ?

आनन्द की व्याख्या बृहदारण्यक उपनिषद् (4-3-33) में कही है कि जो कुछ स्वस्थ मनुष्य इन्द्रियों से मर्त्यलोक में अनुभव करता है, आनन्द उससे करोड़ों गुणा अधिक है, परन्तु है वैसा ही।

इस पर प्रश्न उपस्थित हुआ कि जब आनन्द इन्द्रियों में सुखों के समान ही है तो वहाँ इन्द्रियाँ तो जाती नहीं, फिर आनन्द जीवात्मा को कैसे प्राप्त होता है ? इस पर यह कहा है कि इसमें विस्मय की बात नहीं, क्योंकि—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्॥ *(ब्र०सू० 4-4-11)*

अर्थ—(इन्द्रियाँ) होती हैं विकल्प से। ऐसा जैमिनि ऋषि का मत है। शरीर तो नहीं होता परन्तु उसका विकल्प होता है। वह विकल्प क्या है ? कैसा है ? इस विषय में छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है—

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामाऽऽत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति॥

(छान्दो० 7-26-1)

अर्थ—निश्चय इस प्रकार से देखनेवाले, इस प्रकार मनन करनेवाले और इस प्रकार जाननेवाले इस विद्वान् के लिए आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज, आत्मा से आपः, आत्मा से आविर्भाव और तिरोभाव, आत्मा से अन्न, आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान, आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाक्, आत्मा से नाम, आत्मा से मंत्र, आत्मा से कर्म और आत्मा से सब हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि आत्मा का शरीर नहीं होता, परन्तु आत्मा से शरीर का विकल्प होता है।

ब्रह्मसूत्र में कहा है—

तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः॥ *(ब्र०सू० 4-4-13)*

अर्थ—तन के अभाव में। इन्द्रियों की संधि (संधिस्थान) होने से (इन्द्रियों का कार्य) होता है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि केन के उपनिषत्कार ने केन० 1-3 में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो कहा है कि वहाँ कान नहीं जाते, मन नहीं जाता इत्यादि, उस विषय को दूसरे विद्वान् क्या मानते हैं।

जीवात्मा निर्मल होकर मोक्षधाम में आता है। यह निर्मलता ज्ञानमात्र से नहीं आती। इसके लिए योगदर्शन में यम-नियम इत्यादि आठ कर्म कहे हैं। और तब वहाँ कान इत्यादि गोलक नहीं जाते, परन्तु इनकी शक्ति तो जाती है। तभी जीवात्मा आनन्द भोगता है।

अत: उपनिषत्कार की भाषा ढीली होने से अर्थ स्पष्ट नहीं हैं।

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 4॥

अर्थ—जो वाणी से प्रकाशित नहीं, वरन् जिससे वाणी प्रकाशित होती है, वह तू ब्रह्म जान। यह वह नहीं, जो हम कहते हैं।

हम शब्दों में कहें 'ओं' 'ओं', तो जिसे हम ओं कहते हैं, वह परमात्मा नहीं है। ऐसा परमात्मा की शक्ति से वाणी कहती है। पूर्व-मंत्र और इस मंत्र में अन्तर यह है कि वहाँ अमृतलोक कहा गया है और यहाँ शक्ति का वर्णन है।

वहाँ कहा था कि इन्द्रियाँ, मन इत्यादि अमृतलोक (अर्थात् मोक्षधाम) में नहीं जातीं। छान्दोग्य उपनिषद् और ब्रह्मसूत्रों के प्रवक्ता कहते हैं कि इन्द्रियों की सामर्थ्य जीवात्मा के साथ ब्रह्मलोक में भी जाती है। इन्द्रियों के गोलक (शरीर के भाग जहाँ इन्द्रिय-शक्ति स्थित हैं, वे नहीं जाते।) सुनने, सूँघने, देखने इत्यादि की शक्तियाँ जीवात्मा में रहती हैं।

यहाँ एक दूसरी बात कही है। वह यह कि इन्द्रियों की शक्ति ब्रह्म है (ये गोलक परमात्मा नहीं) अथवा गोलक जिसको कहें, वह ब्रह्म नहीं।

परन्तु जैसा कि हम कह चुके हैं शक्ति परमात्मा नहीं है। शक्ति परमात्मा का लिंग है। यह ठीक है कि लिंग पदार्थ का वह गुण होता है जो सदा पदार्थ के साथ रहता है और जो पदार्थ (लिंगी) के अतिरिक्त अर्थात् किसी दूसरे पदार्थ में नहीं होता। परमात्मा की शक्ति जो प्राणरूप होकर इन्द्रियों में रहती है वह परमात्मा का लिंग है। इस पर भी वह लिंगी अर्थात् परमात्मा नहीं है। ऐसा हम क्यों कहते हैं ? यह हम मंत्र (1-3) की विवेचना में बता आए हैं। प्रमाण और युक्ति से लिंगी और लिंग में अन्तर रहता है।

वास्तव में यह उपनिषद् बहुत ही ढीली भाषा में कहा गया है। अत: अर्थ करते समय उन भावों को जो वेद के मन्त्रों से स्पष्ट होते हैं, ध्यान रखना चाहिए अन्यथा अर्थ के अनर्थ ही हो सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 5॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 6॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदंश्रुतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 7॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ 8॥

अर्थ—मन, चक्षु, श्रोत्र और प्राण के लिए वही बात कही है जो पूर्व-मंत्रों (1-4) में वाणी के विषय में कही है। अर्थात् मन मनन नहीं करता। जिससे मन मनन करता है वह ब्रह्म है। इस प्रकार चक्षु देखता नहीं। जिससे चक्षु देखता है वह ब्रह्म है इत्यादि।

हम मंत्र की विवेचना में कह चुके हैं कि इन अवयवों में परमात्मा का प्राण कार्य करता है। प्राण परमात्मा की शक्ति का नाम है। वह प्राण परमात्मा नहीं है। हमारा निश्चित मत है कि यदि तो उपनिषत्कार ब्रह्म का अर्थ परमात्मा ले रहा है तो वह वेदमंत्रों के विपरीत कुछ कह रहा है। साथ ही अन्य उपनिषत्कारों के भाव के भी विपरीत ही कह रहा है।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए। इस उपनिषद् में प्राण से अभिप्राय फेफड़ों से साँस लेनेवाली वायु है। वैसे प्राण परमात्मा की उस शक्ति को भी कहते हैं जिससे इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। हमने वेद और ब्रह्मसूत्र के प्रमाणों से बताया है कि प्राण सात हैं जो शरीर में भिन्न-भिन्न गतियाँ उत्पन्न करते हैं।

द्वितीय खण्ड

यदि मन्यसे सुवेदेति दहरमेवापि नूनम् त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम्।
यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम्॥ 1॥

अर्थ—यदि तू मानता है कि दहर में रहनेवाले को निश्चय से जानता है, तो तू (उसको) जानता है। देवताओं (इन्द्रियों) में मीमांसा से (तर्क से) देवताओं से पृथक् जानता है, तो जानता है। (शिष्य कहता है) मैं जानता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित केन उपनिषद् (2-1) के पाठ में 'दहर' शब्द है। कुछ अन्य पाठों में इस स्थान पर 'दभ्र' शब्द है। दहर शब्द ब्रह्मसूत्र में ऐसे स्थान के लिए प्रयुक्त हुआ है जो मस्तिष्क में गुहा कहा जाता है। हम उन्हीं अर्थों में इस शब्द को ले रहे हैं।

दहर है जहाँ आत्मा-तत्त्व और परमात्मा-तत्त्व इकट्ठे हो सकते हैं। वहाँ रहता हुआ जीवात्मा पूर्ण शरीर पर नियंत्रण रखता है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से वहाँ पर भी है। दोनों आत्म-तत्त्वों के दहर स्थान पर रहने का वर्णन ब्रह्मसूत्र (1-3-14, 15, 16, 17, 18, 19) में मिलता है। वहाँ दहर और उसमें दोनों आत्म-तत्त्वों का वर्णन है और अन्त में यह कहा है कि जीवात्मा परमात्मा से दी हुई शक्तियों की गतियों को चलाता है।

इस उपनिषद् में कहा है कि जो दहर में उपस्थित को जानता है, वह ही जानता है। उपनिषद् के अर्थ स्पष्ट हैं—यदि, मन्यसे, सुवेदेति, दहरम्, एव, अपि, नूनम्। अर्थ है—यदि मानते हो कि भलीभाँति जानते हो दहर में रहनेवाले को, तो निश्चय से जानते हो।

अन्य भाष्यकारों ने इस पद के अर्थ में कुछ विलक्षणता की है। गीता प्रेस से प्रकाशित उपनिषद् शंकर-भाष्य में अर्थ इस प्रकार किये गए हैं—

'यदि तू ऐसा मानता है' कि 'मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ' तो निश्चय से तू ब्रह्म का थोड़ा-सा रूप जानता है।

हम समझते हैं कि ये अर्थ उपयुक्त नहीं हैं। दहर शब्द का अर्थ है छोटा-सा स्थान, जिसमें दो आत्मतत्त्व इकट्ठे रहते हैं।

हम समझते हैं कि उपनिषत्कार का आशय है कि दहर में स्थित जो दो आत्म-तत्त्वों को जानता है वह ही जानता है। अगले पद इन अर्थों की पुष्टि करते हैं।

उपनिषत्कार कहता है कि जिसको तू देवों में अर्थात् इन्द्रियों में मनन कर जान जाता है। अभिप्राय है कि मनन कर इन्द्रियों से पृथक् जान जाता है। उत्तर में शिष्य कहता है—मैं जानता हूँ।

इस सब का अभिप्राय यह है कि जो व्यक्ति दहर के स्थान में स्थित दो आत्म-तत्त्वों को मनन कर जानता है, वह ब्रह्म को जान जाता है।

ब्रह्मसूत्र में भी कहा है कि दहर नामक स्थान पर जीवात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है।

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च॥ 2॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(शिष्य कह रहा है) मैं यह नहीं मानता कि मैं भली प्रकार जान गया हूँ और न यह कि मैं नहीं जानता। जो हम (शिष्यों) में उसे जानते हैं वे नहीं जानते और जो (कुछ-कुछ) जानते हैं, वे ही जानते हैं।

गुरु ने तो कहा है कि जो दहर में आत्म-तत्त्व को जानता है, वह जानता है। शिष्य का कहना था कि वह दहर में स्थित ब्रह्म को तो जानता है, परन्तु उसे जान लेना भली प्रकार ब्रह्म को जान लेना नहीं कहा जा सकता; शिष्यों में भी जो जानते हैं वे भी भली प्रकार नहीं जानते।

शिष्य का कहना है कि दहर में परमात्मा के कार्य सीमित हैं। इस कारण दहर वाले को जान लेने से ब्रह्म के पूर्ण ज्ञान को जान लेना नहीं कहा जा सकता। यह कुछ-कुछ ही जानना कहा जा सकता है।

यस्यामतं तस्य मतं, मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां, विज्ञातमविजानताम्॥ 3॥

अर्थ—जो मान गया है कि वह नहीं जानता (भली प्रकार), वह उसे जानता है। जिसका मत है कि वह उसे (भली प्रकार) जान गया है वह उसे नहीं जानता।

जाननेवाले के लिए वह अविज्ञात (न जाना हुआ) है क्योंकि उसे पूरा-पूरा न जान सकना ही उसका जानना है।

परमात्मा असीम व्योम को धारण करता है (ब्र०सू० 1-3-10), अतः वह भी असीम है। इस कारण उसको जानना यही है कि वह असीम है, जिसका अन्त नहीं पाया जा सकता। इस प्रकार उसका बल, उसका तेज और उसकी कर्तृत्व-शक्ति आदि सब असीम हैं। 'इस कारण उसके विषय में सब-कुछ न जान सकना ही उसको जानना है।'

जो कहता है कि मैं परमात्मा को जान गया हूँ, वास्तव में वह उसे नहीं जानता। गुरु का कहना है कि दहर को जान लेना भी जान लेना ही है।

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥ 4॥

अर्थ—प्रतीतियों से जाना जाता है कि वह ही अमृत-तत्त्व है, ऐसा जाना गया है। आत्मा को जान लेने से बल मिलता है और विद्या से अमृत का ज्ञान होता है।

प्रतिबोध का अभिप्राय है देखी वस्तुओं पर विचार करना। प्रतीति अर्थात् जो प्रतीत होता है, उसके बोध अर्थात् उस पर मनन करने से अमृत-तत्त्व (अनादि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अक्षर पदार्थों) का ज्ञान होता है।

ब्रह्मसूत्र में भी कहा है—

'सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्॥' *(ब्र० सू० 1-2-1)*

अर्थ—जो सब स्थान पर प्रसिद्ध (जाना-बूझा) है उसको जानने से (ब्रह्म का ज्ञान होता है)।

यही उपनिषत्कार का अभिप्राय है कि जो कुछ हम देखते हैं उस पर भली प्रकार मनन करें तो अमृत-तत्त्व (अनादि अक्षर तत्त्व) का ज्ञान होता है। उपनिषद्-वाक्य है 'हिं विन्दते' यानी निश्चय से जाना जाता है।

जो आत्मा को जान लेता है वह वीर्य, बल को प्राप्त करता है।

तीन अनादि तत्त्व हैं, यह हम बता चुके हैं। तीनों अमृत अर्थात् न नष्ट होनेवाले (अक्षर) हैं। इनमें दो आत्म-तत्त्व हैं। इन आत्म-तत्त्वों को जान लेने से मनुष्य को बल प्रात होता है। और विद्या (संसार के ज्ञान) से अमृत (अक्षर) का ज्ञान होता है।

वैसे विद्या का अभिप्राय परा विद्या भी है, परन्तु यहाँ विद्या से अभिप्राय संसार के ज्ञान से है। यदि विद्या का अर्थ परा विद्या करेंगे तो अर्थ बनेंगे परा के जानने से परा का ज्ञान होता है। यह अर्थ मंत्र के ऊपर के भाग से मेल नहीं खाता। ऊपर कहा है कि प्रतीतियों से जो जाना जाता है, अर्थात् जो कुछ प्रतीत होता है उससे अमृत प्राप्त होता है। प्रतीत इन्द्रियों से होता है। अभिप्राय यह होगा कि जो कुछ इन्द्रियों से जाना जाता है उस पर विचार करने से जो ज्ञान होता है। इस कारण मंत्र के दूसरे अंश में जो विद्या कहा है इसका अभिप्राय है कि जो इन्द्रियों से प्राप्त होता है उस पर मनन करना प्रतिबोध कहाता है। अतएव मंत्र की दूसरी पंक्ति का यह अर्थ बनता है कि संसार के ज्ञान पर मनन करने से अक्षर पदार्थों का ज्ञान होता है और उन अक्षर पदार्थों में आत्म-तत्त्वों के ज्ञान से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को बल मिलता है।

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति, न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः, प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥ 5॥

अर्थ—यदि इस जन्म में ब्रह्म को जान लिया तो सत्य (ठीक) है, और यदि न जाना तो महान् हानि होगी।

बुद्धिमान् भूतों में (पंचभौतिक संसार में) और भूतों (प्राणियों) में चिन्तन कर इस जन्म (शरीर) को छोड़ने पर अमृत (मुक्त) हो जाते हैं।

इस मंत्र में भूतेषु दो बार आया है। अर्थ है पंच महाभूतों से बने संसार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिन्तन कर मोक्ष-पद प्राप्त होता है।

क्या चिन्तन करने से क्या प्राप्त होता है, यह विचारणीय है। हमने ऊपर ब्रह्मसूत्र (1-2-1) के प्रमाण से भी बताया है कि इस जगत् के उपदेश से ब्रह्म का ज्ञान होता है। तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह किस प्रकार होता है?

पहले प्राणी सृष्टि का चिन्तन करें। कीट-पतंगे, कुत्ते, बिल्ली इत्यादि जीवों के जीवन को देखकर स्वाभाविक प्रश्न उत्पन्न होता है कि ऐसा क्यों है? एक मनुष्य तो बुद्धि और स्मरण-शक्ति रखता है और मनुष्येतर जीव क्यों नहीं रखते? अथवा एक व्यक्ति धनी-मानी अथवा ज्ञानी के घर में उत्पन्न होता है और दूसरा एक मूर्ख उजड्ड गँवार के घर में क्यों उत्पन्न होता है? ये सब विभिन्नताएँ देखकर और इस पर चिन्तन करने से यही समझ में आता है कि अवश्य कहीं पूर्व-जन्म है और उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्म करने से भिन्न-भिन्न प्रकार की योनियों और स्थितियों में जन्म होता है। यह घटनावश नहीं है। दो अपने को बुद्धिमान् माननेवाले घर से चोरी करने निकलते हैं। एक तो चोरी कर धन प्राप्त कर घर लौट आता है और दूसरा पकड़ा जाता है और फिर दण्ड पा जाता है।

इसी प्रकार की अनेकानेक घटनाएँ जब हम संसार में होती हुई देखते हैं, तब किसी ज्ञानवान् शक्तिमान् का हाथ इन सब के पीछे दिखाई देता है।

इसी प्रकार ये सुन्दर वन, पर्वत, नदी, नाले और चन्द्र, सूर्य, तारागण आदि जो हमको अनेक प्रकार से सुख देते हैं, भला अपने-आप बन गए हैं अथवा किसी के बनाने से बने हैं?

इसी प्रकार चिन्तन करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि संसार में भोक्ता हैं, भोग्य पदार्थ भी हैं, साथ ही इनको प्रेरणा देनेवाला भी कोई है।

इस विचार-शृंखला को ब्रह्मसूत्र (1-2-1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11) में बहुत सुन्दरता से स्पष्ट किया है और अंत में वहाँ यह निष्कर्ष निकाला गया है कि शरीर है, शरीर में जीवात्मा है और परमात्मा है। बिना इन तीन के अस्तित्व को माने यह सब-कुछ जो हम भूतेषु (प्राणियों में) और भूतेषु (पंचभौतिक जगत् में) देखते हैं यह सम्भव नहीं हो सकता। जिसको इन तीनों का ज्ञान हो जाता है वह ब्रह्म का ज्ञान पा जाता है।

तृतीय खण्ड

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त।
त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति॥ 1॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—कहते हैं कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की, ब्रह्म की विजय में देवता गौरवान्वित हुए, (परन्तु) देवता इसे अपनी ही विजय मानकर अपनी ही महिमा समझने लगे।

'कहते हैं' का अभिप्राय है कि जिस समय उपनिषद् कहा गया, उस समय उपनिषत्कार की दृष्टि में कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं था जो सर्वमान्य होता। दर्शनशास्त्र तो अपने कथन को तर्क से सिद्ध करते हैं। तर्क से सिद्ध करके ही वे श्रुति-स्मृति का स्मरण करते हैं।

उदाहरण के रूप में, ब्रह्मसूत्र में सूत्र 1-1-2 से सूत्र 1-1-10 तक ब्रह्म की सिद्धि में दी गई युक्तियाँ हैं। कहा है कि जिससे सृष्टि की रचना, सृष्टि का पालन और सृष्टि का विनाश होता है, वह ब्रह्म है। फिर कहा है कि जिससे शास्त्र का ज्ञान प्राप्त होता है, वह ब्रह्म है। तत्पश्चात् कहा है कि जिससे जगत् के पदार्थों का समन्वय हो रहा है वह ब्रह्म है; जो ईक्षण करता है वह ब्रह्म है; आत्मा नामवाले (जीवात्मा और परमात्मा) ब्रह्म गौण नहीं हैं; इस आत्मा नामवाले में निश्चय से मोक्ष का उपदेश है। इसके आगे कहा है कि वह आत्मा नामवाले गुणों में हीन नहीं। वह अपने-आप ही सत्य है। आगे कहा है जगत् में गतियों की समानता देखी जाने से एक ब्रह्म का ज्ञान होता है। इतना कहकर दर्शनाचार्य ने कहा है—

श्रुतत्वाच्च॥ *(ब्र० सू० 1-1-11)*

अर्थ—(जो कुछ ऊपर युक्ति से और प्रमाण से वर्णन किया है) वह श्रुति भी कहती है।

श्रुति से संकेत वेद की ओर है। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि दर्शनाचार्य अपने ज्ञान का स्रोत वेद बताता है। परन्तु उपनिषत्कार को अपने समर्थन में वेद का नाम लेने में लज्जा अनुभव हुई है।

इसमें एक ऐतिहासिक कारण प्रतीत होता है। वह यह कि उपनिषदों की रचना से पहले ब्राह्मणग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। ब्राह्मणग्रन्थ लिखनेवालों ने वेदमंत्रों का विनियोग यज्ञ की क्रियाओं अथवा यज्ञ के साधनों के साथ कर रखा था। इस विनियोग से वेदों की महिमा कम ही हुई थी। अनेक स्थानों पर विनियोग अस्वाभाविक और अनुपयुक्त हुआ था। उपनिषद्-ग्रन्थ उस समय कहे गए, जब ब्राह्मणग्रन्थों का व्यापक प्रचार हो चुका था और परिणामस्वरूप वेदों की महिमा बहुत कम हो चुकी थी। वेद कर्म-काण्ड के ग्रन्थ माने जाने लगे थे, यद्यपि वे ऐसे नहीं हैं। उनको कर्म-काण्डों में घसीट लाने से वेद, काठ के हिरण के समान अर्थहीन हो चुके थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कारण है कि उपनिषत्कार ने अपने कथन की साक्षी देने में वेद का नाम नहीं लिया और कह दिया कि कहते हैं कि ब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की। इस कथन का अभिप्राय है कि परमात्मा ने ही देवताओं की सृष्टि की। ऐसा वेद में कहा है। उदाहरण के रूप में ऋ० 1-163-1, 2 में कहा है कि परमात्मा के तेज ने अर्थात् अग्नि ने प्रकृति के परमाणुओं पर लगाम लगाई तो उसमें से इन्द्र प्रकट हुआ। इन्द्र देवता है अर्थात् परमात्मा ने अपनी शक्ति से इन्द्र को प्रकट किया। यह इन्द्र अतिपराक्रमी है और जहाँ निर्माण करता है वहाँ तोड़-फोड़ भी कर सकता है। इन्द्र की शक्ति का प्रयोग करनेवाले यह समझने लगे कि इन्द्र ही परमात्मा है अथवा इन्द्र अपनी शक्ति से विजयी हो रहा है।

उपनिषत्कार ने कहा है कि परमात्मा ने अपनी शक्ति से देवताओं को महिमायुक्त किया। देवता से अभिप्राय है कि परमात्मा की शक्ति का प्रयोग करनेवाले, परमात्मा के दिव्य गुणों से दिव्य होनेवाले। ये प्राकृतिक पदार्थ भी हो सकते हैं और मनुष्य भी हो सकते हैं। वे समझने लगते हैं कि वे ही परमात्मा अथवा उससे भी ऊपर हैं और वे अपनी ही शक्ति से महिमायुक्त हो रहे हैं।

यह है अभिप्राय उपनिषद् के इस मंत्र का। वर्तमान युग के वैज्ञानिक यही मानते हैं कि प्रकृति सर्वोपरि है।

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव।
तन्न व्यजानत किमिदं यक्षमिति॥ 2॥

अर्थ—वह (ब्रह्म) उन (देवताओं) की (इस अभिमानयुक्त बात को) जान गया और उनके समक्ष प्रकट हुआ। वे (देवता) नहीं जान सके यह यक्ष (अद्भुत शक्ति) क्या है?

यहाँ अलंकार के रूप में प्रकट करने का यत्न किया है कि देवताओं में जो ओज है वह ब्रह्म का ही है। इस प्रकार शक्ति ने कभी देवताओं को ललकारा होगा अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता, परन्तु अलंकार में यह प्रकट करने के लिए कि देवताओं में शक्ति परमात्मा अर्थात् ब्रह्म की है, इसकी कल्पना की गई है। यदि वह शक्ति देवताओं से पृथक् हो जाए तो देवताओं की क्यां अवस्था होगी?

वेद इसका वर्णन इस प्रकार करता है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

(ऋ० 1-163-1)

अभिप्राय यह है कि अर्वा शोर मचाता हुआ अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुआ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्र गति से फैल गया।

आगे कहा है—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥

(ऋ० 1-163-2)

अर्थात् यह अर्वा त्रितों (परमाणुओं) पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो गया। परमाणुओं ने अर्वा की लगाम स्वीकार कर ली। पहले परमाणु पर इन्द्र अधिष्ठित था। जब इन्द्र बाहर प्रकट हुआ तो परमाणुओं के निबन्धन बन गए।

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥ 3॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥ 4॥

(ऋ० 1-163-3, 4)

इन निबन्धनों को आपः कहते हैं। ये अन्तरिक्ष में बने और इनसे ही जगत् के सब पदार्थ बने हैं।

अब इन्द्र के विषय में भी कह दिया है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नम्णस्य मह्ना स जनासः इन्द्रः॥

(ऋ० 2-12-1)

इस प्रकार वेद में इन्द्र का आविर्भाव बताया है। इन्द्र से ही अन्य देवता बने हैं।

तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेद एतद्विजानीहि किमिदं यक्षमिति तथेति॥ 3॥

अर्थ—उन्होंने (देवताओं ने) अग्नि को कहा, हे जातवेदा! इस पैदा हुए का पता लगाओ कि यह यक्ष (अद्‌भुत शक्ति) क्या है? पता करती हूँ, अग्नि ने कहा।

वह अग्नि जो आदि में थी और जिसने इस सृष्टि की रचना की, जिसका वर्णन वेद 1-1-1 से 9 तक में है अथवा जिसका वर्णन ऋ० 1-163-1, 2 में है वह देवताओं में दिव्य गुण उत्पन्न करनेवाली है और जातवेदा वह अग्नि है जो लकड़ी, कोयला, तेल इत्यादि के जलने से उत्पन्न होती है। उपनिषत्कार कह रहा है कि देवताओं ने इस भौतिक अग्नि को सम्बोधित कर कहा कि पता करे कि वह क्या है जो उनमें से निकलकर बाहर हो गई है, जिसे उपनिषत्कार ने यक्ष के नाम से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बोधित किया है।

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्कोऽसीत्यग्निर्वा
अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति॥ 4॥

अर्थ—यह (जातवेदा) उस श्रेष्ठ (यक्ष) के पास गई और उस (यक्ष) ने पूछा—तुम कौन हो? उस (जातवेदा) ने कहा—मैं निश्चय से जातवेदा ही हूँ।

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं
सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति॥ 5॥

अर्थ—(यक्ष ने आगे पूछा) तुझमें सामर्थ्य क्या है? (जातवेदा ने कहा) मैं पृथिवी पर जो कुछ है उसको जलाकर भस्म कर सकती हूँ।

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन
तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते
नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति॥ 6॥

अर्थ—तब उस (यक्ष) ने उस (जातवेदा) के सामने एक तिनका रख दिया और कहा, 'इसे जलाओ।' वह (जातवेदा) उस (तिनके) के पास गई और पूरे बल से भी जलाने में समर्थ नहीं हुई। वह (जातवेदा) उसके पास से लौट आई और अपने साथी देवताओं से बोली—मैं इस यक्ष के विषय में नहीं जान सकी।

अथ वायुमब्रुवन् वायवेतद् विजानीहि
किमेतद् यक्षमिति॥ 7॥

अर्थ—तब (उन देवताओं ने) वायु से कहा, हे वायु! पता करो यह कौन है?

तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत् कोऽसीति
वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति॥ 8॥

अर्थ—तब वायु यक्ष के पास गया। उस (यक्ष) ने वायु से पूछा—तुम कौन हो? उस (वायु) ने कहा—मैं मातरिश्वा हूँ।

वैदिक भाषा में वायु उसको कहते हैं जो गति उत्पन्न करता है तथा परमाणुओं एवं वस्तु के कणों को जोड़ देता है (देखें बृ० उ० 3-7)। यह वायु जो बहती हुई हम स्पर्श से अनुभव करते हैं, उसे मातरिश्वा कहते हैं। इसके विषय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही इस उपनिषद् के मंत्र में कहा है—

तस्मिंःस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदंःसर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति॥ 9॥

अर्थ—(तब यक्ष ने पूछा) तुझमें क्या सामर्थ्य है? वायु ने कहा—पृथिवी पर यह जो कुछ है उसे मैं ग्रहण कर (उड़ाकर ले-जा) सकता हूँ।

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति॥ 10॥

अर्थ—(यक्ष ने) एक तिनके को रखा (और वायु क़ो कहा)—इसे ग्रहण करो (उड़ाकर ले जाओ)। वह (वायु) उसे ले-जाने में समर्थ नहीं हुआ। तब उसके पास से लौट गया और (अपने साथी देवताओं से बोला), मैं नहीं जान सका कि यह यक्ष कौन है।

अथेन्द्रमब्रुवन्,मघवन्नेतद् विजानीहि किमेतद् यक्षमिति। तथेति। तदभ्यद्रवत् तस्मात्तिरोदधे॥ 11॥

अर्थ—अब (देवताओं ने) इन्द्र से कहा—मघवन्! यह यक्ष कौन है? यह पता करो। तब (बहुत अच्छा कहकर) इन्द्र उसी (यक्ष) के पास गया। वह इन्द्र के समक्ष अन्तर्ध्यान हो गया।

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमाः हैमवतीं ताः होवाच किमेतद् यक्षमिति॥ 12॥

अर्थ—तब आकाश में एक स्त्री को इन्द्र ने देखा। वह स्त्री अति शोभामयी थी उमा (अति सुन्दर) और स्वर्ण-भूषणों से लदी हुई थी। उस (इन्द्र) ने उस (स्त्री) से पूछा—यह यक्ष कौन था?

जो वेदज्ञान को जानते हैं वे इस तथ्य से परिचित हैं कि इन्द्र में शक्ति परमात्मा की दी हुई नहीं है। प्रकृति में छुपी त्रिगुणात्मक शक्ति ही इन्द्र है। प्रकृति अक्षर है, अनादि है, वैसे ही जैसे परमात्मा अक्षर और अनादि है। वेद तीन अनादि पदार्थ मानता है—परमात्मा, जीवात्माएँ तथा प्रकृति। जब प्रकृति अनादि है तो उसमें छुपी शक्ति अर्थात् इन्द्र भी अनादि हुआ। इसका अभिप्राय यह है कि अन्य देवताओं की भाँति परमात्मा की शक्ति से इन्द्र शक्तिमान् नहीं था। वह स्वयं शक्तिमान् है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाँ, इन्द्र प्रकट तब होता है, जब परमात्मा की अग्नि परमाणु पर लगाम की भाँति आरूढ़ हो जाती है। जब तक यह अग्नि परमाणु पर लगाम की भाँति आरूढ़ रहती है, तब तक इन्द्र अपनी शक्ति से कार्य करता रहता है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि जब इन्द्र परमात्मा के समक्ष आया तो परमात्मा की शक्ति उसको निस्तेज नहीं कर सकी।

तब परमात्मा की शक्ति स्वयं अपने सुन्दर ओजस्वी रूप में प्रकट हुई। (स्त्री के रूप में प्रकट हुई।) इसका यही अभिप्राय है कि परमात्मा की शक्ति (आदि अग्नि) प्रकट हुई। वेदमंत्र में कहा है—

ओं अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ *(ऋ० 1-1-1)*

उपनिषत्कार पूर्ण कथन का, एक अलंकार के रूप में ही वर्णन कर रहा है। यह वेद में माना गया है कि परमात्मा की इसी शक्ति ने देवताओं के सहाय से छन्दों का उच्चारण और प्रसार किया। उन छन्दों को समझकर ऋषि ज्ञानवान् हुए और तब उन्होंने वेदज्ञान मनुष्यों को दिया।

उपनिषद् में उसी ज्ञान का एक अंश दिया गया है।

चतुर्थ खण्ड

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति।
ततो हैव विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ 1॥

अर्थ—उस (स्त्री) ने क़हा—यह ब्रह्म है। ब्रह्म की विजय से ही (देवता) महिमावान् हुए हैं। तब इन्द्र को पता चल गया कि वह यक्ष ब्रह्म है॥ 1॥

वह यक्ष (अर्थात् परमात्मा की शक्ति) इन्द्र को उसी भाँति ललकार नहीं सकी, जैसे वह जातवेदा अग्नि इत्यादि को ललकार सकी थी। इसमें कारण यह था कि इन्द्र भी स्वयं अपनी शक्ति से महान् है। परमात्मा ने उसे प्रकट होने में सहायता अवश्य दी है, परन्तु इन्द्र की शक्ति परमात्मा से पृथक् है।

इसका अभिप्राय स्पष्ट है कि प्रकृति यद्यपि जड़ है (अचेतन है), इस पर भी प्रकृति परमात्मा द्वारा निर्मित नहीं। वह त्रिगुणात्मक शक्ति परमात्मा की अग्नि से पृथक् है।

अतः परमात्मा की शक्ति ने जो स्त्री के रूप में प्रकट हुई थी, इन्द्र को कहा कि यक्ष अर्थात् वह शक्ति जो देवताओं को महिमावान् किये हुए थी, वह परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति ही थी।

उपनिषत्कार ने यक्ष अर्थात् परमात्मा की शक्ति को इन्द्र से पृथक् कहकर वेदज्ञान के तत्त्व का दर्शन ही कराया है। इनको जब पता चला कि वह यक्ष परमात्मा की शक्ति ही है तो वह देवताओं के पास लौट गया।

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान् देवान्
यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पृशुस्ते ह्येनत्प्रथमो
विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ 2॥

अर्थ—इसलिए कि जो अग्नि, वायु और इन्द्र है, उसने दूसरे देवताओं के अधिक समीप से परमात्मा का स्पर्श किया था। उन्होंने ही ब्रह्म को पहले जाना कि यह ब्रह्म है।

इस मंत्र में उपनिषत्कार ने अति संक्षेप में सृष्टि-रचना के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन कर दिया है। वह इतिहास इस प्रकार है—

वर्तमान जगत्-रचना से पूर्व चारों ओर अन्धकार था। अव्यक्त और व्यक्त प्रकृति के रूप भी नहीं थे। प्रकृति स्वयं भी अव्यक्त है तथा प्रकृति से महत् अहंकार और तन्मात्र—प्रथम तीन परिणाम भी अव्यक्त थे। अव्यक्त का अर्थ है जो इन्द्रियों अथवा किसी यंत्र से भी न जाने जा सके। कुछ भी जान पाने योग्य नहीं था।

उस समय दो पदार्थ थे। एक स्वधा अर्थात् प्रकृति थी। प्रकृति को स्वधा इसलिए कहा है कि यह अपने-आप में स्थित थी, अर्थात् अपने ही कारण से जड़ थी। दूसरी वस्तु 'आनीत् अवातम्'—निश्चल शक्ति (Energy in potential form) थी। शक्ति तो थी, परन्तु निष्क्रिय थी। यह शक्ति परमात्मा का ही लिंग है। लिंग वस्तु के उस गुण को कहते हैं जो उसमें ही हो और किसी अन्य में न हो। अर्थात् यह 'आनीत् अवातम्' जो उस समय था वह परमात्मा का अभिन्न गुण था। इस स्थिति का वर्णन वेद (ऋ० 10-129-1, 2) में मिलता है।

यह 'आनीत् अवातम्' परमात्मा की इच्छा से सक्रिय हो जाता है। वेद में कहा है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्॥

(ऋ० 10-129-4)

अर्थ—उस (रचना आरम्भ) काल में पहले सबसे प्रबल परमात्मा की कामना बीज बन जाती है और सृष्टि-रचना आरम्भ होती है। यह भी बताया है कि यह कामना क्या करती है। कहा है कि यह 'आनीत् अवातम्' सक्रिय हो अश्व की भाँति रचना-कार्य करता है। यह घोर शोर करता है और अन्तरिक्ष में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चारों ओर फैल जाता है (ऋ० 1-163-1)। यह शक्ति प्रकृति के परमाणुओं (त्रित जो तीन गुणों की साम्यावस्था कही जाती है, पर लगाम की भाँति सवार हो जाती है और परमाणु के भीतर जो इन्द्र पहले अधिष्ठित होता है, वह बहिर्मुख हो जाता है। (ऋ० 1-163-2)

जब यह परमात्मा का तेज परमाणु पर सवार हो जाता है तो इन्द्र प्रकट होकर कार्य करने लगता है। इससे निश्चय स्वधा के परमाणु गतिवान् हो जाते हैं। यह वायु के कारण है। अतः परमात्मा की शक्ति है अग्नि। अग्नि से इन्द्र प्रकट हुआ और इन्द्र ने परमाणुओं में गति उत्पन्न की (वायु के प्रभाव से)।

इस कारण उपनिषद् में कहा है इन्द्र, वायु और अग्नि का परमात्मा से सीधा सम्बन्ध बन जाता है। परमात्मा की शक्ति अग्नि कहाती है। इसे उपनिषत्कार ने अपने अलंकार में स्वर्ण-भूषणों से अलंकृत उमा कहा है। वह ही परमात्मा का उपदेश देने लगी है। अग्नि ही वेद (ज्ञान) की प्रवक्ता मानी गई है। उसके कथन में पहली बात यह बताई गई है कि परमात्मा की शक्ति अग्नि, वायु और इन्द्र तीनों का परमात्मा से पहले सम्पर्क बनता है और सृष्टि-रचना आरम्भ हो जाती है।

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श, स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति॥ 3॥

अर्थ—इसलिए इन्द्र सब देवताओं से बढ़कर हुआ। उसने सब देवताओं से पहले निकट से (परमात्मा) छूआ और जाना।

वेद में कहा है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० 2-12-1)

अभिप्राय यह है कि मनस्वी जो सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ, जो दिव्य गुणवालों में दिव्य और सबको विभूषित करनेवाला है, वह इन्द्र है।

यही उपनिषत्कार ने कहा है कि वह सब देवताओं में पहले उत्पन्न हुआ था। परमात्मा ने इन्द्र और वायु को प्रकट किया, इस कारण दोनों उसके स्पर्श में आ गए।

तस्यैष आदेशो यदेतद् विद्युतो व्यद्युतदा३
इतीन्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम्॥ 4॥

अर्थ—उस ब्रह्म का यह आदेश है (अर्थात् परमात्मा के आदेश से यह हुआ। क्या हुआ?) वह विद्युत् के चमकने के सदृश (पलक झपकने की भाँति) प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ। यह परमात्मा का आधिदैवत रूप है।

ऊपर के मंत्र में कहा है कि इन्द्र प्रकट होते ही परमात्मा के स्पर्श में आया। हमने बताया है कि इन्द्र प्रकृति की त्रिगुणात्मक शक्ति है।

सांख्य दर्शन में कहा है—

'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः' *(सां०द० 1-61)*

अर्थ—प्रकृति का प्रत्येक परमाणु सत्त्व, रजस् और तमस् तीन प्रकार की शक्तियों की साम्यावस्था (balanced state) है। परमात्मा के प्रयत्न से ये परमाणु असाम्यावस्था में हो जाते हैं।

वेद में कहा है—

असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते'' *(ऋ० 1-163-3)*

अर्थ—साम्यावस्था में मिले हुए फट गए (वे असम में हो गए)। सांख्य दर्शन में भी कहा है—

'प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारो' *(सां० द० 1-61)*

अर्थ—प्रकृति से महत् बना; महत् से (तीन) अहंकार बने।

वेद में इनको आपः कहा है और इनसे सब जगत् बना।

ये सब-कुछ किससे बने? वेद में कहा है कि परमात्मा के तेज से बने। वहाँ इसका नाम अर्वः कहा है (ऋ० 1-163-1)। यह घोर नाद करता हुआ प्रकट हुआ। वह तीव्र गति से अन्तरिक्ष में फैल गया।

इस तेज के प्रकट होने का उल्लेख एक अन्य वेदमंत्र में है—

तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥ *(ऋ० 10-129-3)*

तप से महान् उत्पन्न हुआ।

यही उपनिषत्कार ने कहा है कि विद्युत् की चमक की भाँति उत्पन्न हुआ। इस तेज को उपनिषत्कार ने परमात्मा का आधिदैवत रूप कहा है। यह इस कारण कि इसके द्वारा ही इन्द्र, वायु, मरुतादि देवता उत्पन्न हुए हैं।

अथाध्यात्मं यदेतद् गच्छतीव च मनोऽनेन
चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णः संकल्पः॥ 5॥

अर्थ—अतः अध्यात्म का उपदेश है। और यह जो उपनिषद् में कहा है उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्म अर्थात् परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव का बार-बार स्मरण किया जाए। उसके गुण-कर्म-स्वभाव को स्मृति से भी उपस्थित किया जाए। (तब ये परमात्मा के गुण आत्मा के संस्कार बन जाने से एक जन्म से दूसरे जन्म में जा सकते हैं।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जाता है। यह महत् (यानी प्रकृति का प्रथम परिणाम) का अणुमात्र (अंश) है। जब शरीर छूटता है तो यह भी छूट जाता है।

इस प्रकार मन जीवात्मा पर संस्कार निर्माण करने का साधन है अर्थात् अध्यात्म-ज्ञान का साधन है। इसी कारण उपनिषत्कार ने अध्यात्म का कथन करते समय पहले मन का ही उल्लेख किया है। कहा है कि ब्रह्म (परमात्मा) का बार-बार स्मरण मन से करो।

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं
वेदाऽभि हैनः सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥ 6॥

अर्थ—यह प्रिय (ब्रह्म) नाम सम्भजनीय है। उसको 'वन' इस नाम से स्मरण करना चाहिए। जो इस प्रकार जानता है उसकी सभी लोग इच्छा करने लगते (प्यार करने लगते) हैं।

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मीं वाव त
उपनिषदमब्रूमेति॥ 7॥

अर्थ—हे (गुरुदेव!) उपनिषद् कहिये। (गुरु ने कहा) वह तुमको कह दिया है। निश्चय से तुम्हें ब्राह्मी उपनिषद् कहा है।

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः
सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम्॥ 8॥

अर्थ—उसका तप दम (संयम) से कर्म करना प्रतिष्ठित है (उसकी प्रतिष्ठा है) और सब अंगों में वेद इनका घर है (वेद में इसके सब अंग कहे गए हैं)।

यहाँ पर उपनिषद् का भोग पड़ा है। यह कहा है कि ब्रह्म की प्राप्ति (समझने) के लिए तप, दम और कर्म आवश्यक हैं। तप का अर्थ है लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर एकाग्र हो यत्न करना। दम का अभिप्राय है इन्द्रियों के वेगों को नियन्त्रण में रखना और कर्म का अभिप्राय है निष्काम भाव से (कामनारहित हो) कर्म करना। इन सब का वेदों में वर्णन है। वेद इनका घर है। अभिप्राय यही है कि इनका वर्णन वेदों में है।

उपनिषद् तो अति संक्षेप में कहा गया है। इस विषय का विस्तृत वर्णन वेद में है। वेद में कहे की ही एक झलक केनोपनिषद् में है।

हमारा यह निश्चित मत है कि किसी भी उपनिषद् में कर्म-त्याग का कथन नहीं है। जहाँ है, वहाँ कामनायुक्त कर्मों के त्याग का ही अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोपनिषद्

उपोद्घात

इस उपनिषद् में प्राणी के शरीर, जीवात्मा और परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है। उपनिषद् की पृष्ठभूमि में एक कथा का वर्णन है। उस कथा के द्वारा उपदेश दिया गया है।

कथा इस प्रकार है कि नचिकेता वाजश्रवस् का पुत्र था और पिता के द्वारा किये यज्ञ में दान-दक्षिणा पर असन्तुष्ट हो पिता के कार्य की निन्दा कर पूछने लगा कि वह उसे (अपने पुत्र को) दान में किसे दे रहे हैं ? पिता को क्रोध आ गया और उसने कह दिया, 'मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ।' इस पर नचिकेता मृत्यु के पास चला गया और यम ने उसे उपदेश दिया।

कुछ भाष्यकारों का विचार है कि इस कथा का मूल वेद (ऋ० 10-14-1, 2) में है। हम समझते हैं कि ऐसा नहीं है। ऋग्वेद के ये मंत्र इस प्रकार हैं—

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥

(ऋ० 10-14-1)

मन्त्र का अन्वय तथा अर्थ इस प्रकार है—

(महीः अनु-प्रवतः परेयिवांसम्) पृथिवी आदि पर स्थित श्रेष्ठ कर्म करनेवाले मनुष्य मरने पर जब परलोक को जाते हैं;

(बहुभ्यः पन्थाम्-अनुपस्पशानम्) बहुत मार्गों से बन्धन काटते हुए;

(जनानां सङ्गमनं वैवस्वतं यमं राजानं हविषा दुवस्य) लोगों के अथवा उत्पन्न वस्तुओं के प्राप्ति-स्थान राजा वैवस्वत-पुत्र यम को हवि दो।

इस मन्त्र का अभिप्राय यह है कि वैवस्वत के पुत्र यम को अपने यज्ञरूपी उद्योग में से भाग दें।

वैवस्वत है सूर्य। यम उसकी एक प्रकार की रश्मि है। उसकी हवि देने का अभिप्राय है उसको व्यवहार में लाने का प्रबन्ध किया जाए।

हमारा विचार है कि यहाँ नचिकेता-यम की कथा का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हवि वह द्रव्य होता है जो यज्ञ में आहुति देने पर यज्ञ के उपरान्त शेष बचे। इन मंत्रों में अथवा वेद में कहीं भी नचिकेता तथा उसके पिता वाजश्रवस् का अथवा उनके किसी यज्ञ का कथन नहीं है।

सायण कहता है कि इस कथन का मूल (ऋ० 10-135) में है। उसे भी देखा जा सकता है। इस सूक्त का प्रथम मन्त्र है—

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणां अनु वेनति॥

(ऋ० 10-135-1)

इसका अन्वयार्थ इस प्रकार है—

(वृक्षे सुपलाशे यस्मिन् देवैः यमः संपिबते)

सुन्दर अंगों वाले शरीर में, इन्द्रियों से, जीवात्मा भोग भोगता है।

(अत्रा विश्पतिः पिता नः पुराणान् अनु वेनति)

यहाँ (इस शरीर में) हमारा पिता रक्षक प्राचीनकाल से कामना करता है (आत्मा की भलाई की कामना करता है)।

सायण ने मंत्र में अकारण असंगत रूप में यह लिख दिया है''''बहुवचनम् यम नचिकेतासौ जनको वाजश्रवसः।

फिर अन्त में यह लिख दिया—नचिकेता नाम कुमारो वाजश्रवसेन पित्रा यमलोके प्रस्थापितः सन्—

मंत्र अथवा सूक्त में ऐसा कुछ भी नहीं है।

अतः हमारा मत है कि सायण ने वेद की महिमा गान करते हुए भी इसे एक किस्से-कहानियों की पुस्तक बना दिया है।

वास्तव में यह कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (3-11-2) की है। हमारा सुविचारित मत है कि ब्राह्मणग्रंथ वेद नहीं हैं। ये ग्रंथ ऐसे विद्वानों के लिखे हैं जो असंगत कहानियाँ लिखने का अभ्यास रखते थे। वास्तव में ब्राह्मणग्रन्थ वेदों की व्याख्या में कहे गए हैं और कहनेवालों ने व्याख्या करते हुए ऐसा लिख दिया मानो वे कहानियाँ वेद में से ली गई हैं। वर्तमान युग के उपन्यासों को इस श्रेणी में गिनाया जा सकता है।

महाभारत के प्रवक्ता श्रीकृष्ण द्वैपायण व्यास के एक शिष्य 'कठ' द्वारा लिखा यह उपनिषद् है। उपनिषद् का विषय अति महत्त्व का है। बहुत ही सरल और रोचक भाषा में यह लिखा गया है। इस पर भी उपनिषद् मनुष्यकृत होने से कहीं-कहीं यह वेदों के अनुकूल नहीं हो पाया। यह हम उपनिषद् के मन्त्रों की विवेचना करते हुए स्पष्ट करने का यत्न करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति पाठ

ओं सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

अर्थ—हे परमात्मा! हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करो। हम दोनों का साथ-साथ पालन करो। हम दोनों साथ-साथ बल और वीर्य को प्राप्त करें (अथवा हम दोनों का बल-वीर्य साथ-साथ कार्य करे)। हम दोनों का साथ-साथ पढ़ा हुआ तेजस्वी (सफल) हो। परस्पर विद्वेष न करें।

मुण्डक उपनिषद् और माण्डूक्य उपनिषद् में शान्तिपाठ वेद-संहिताओं में से दिया है। केन उपनिषद् में शान्तिपाठ वेद का नहीं, इस पर भी उपयुक्त ही है। ईशावास्योपनिषद् में एक मंत्र को छोड़कर सब मंत्र यजुर्वेद के हैं। और हमारा मत है कि वह मन्त्र वहाँ उपयुक्त भी नहीं है। ईशावास्योपनिषद् में शान्तिपाठ बृहदारण्यक उपनिषद् का एक पाठ है। उसका उपनिषद् में दिये मन्त्रों से सम्बन्ध है। परन्तु इस उपनिषद् में उपनिषत्कार ने अपने यजुर्वेदीय ब्राह्मण का एक पाठ दे दिया है।

हमारा विचार है कि यह उपनिषत्कार की वेद की प्रति भावना को प्रकट करता है। कुछ उपनिषत्कार वेद पर अगाध श्रद्धा रखते प्रतीत होते हैं। कुछ अन्य हैं जो वेदाश्रय छोड़कर उपनिषद् कहने लगे हैं। यह कठोपनिषद् का प्रवक्ता और केन उपनिषद् का प्रवक्ता भी कुछ ऐसे ही प्रतीत होते हैं।

इसमें कारण ब्राह्मणग्रन्थों का वेद और पाठकों के बीच में व्यवधान खड़ा कर देना है। कुछ भी हो। शान्तिपाठ में प्रार्थना तो ठीक ही प्रतीत होती है। यह उपनिषद् एक प्रकार का गुरु-शिष्य में सम्वाद ही है।

प्रथम अध्याय : प्रथमा वल्ली

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस॥ 1॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तꣳ ह कुमारꣳ सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु
श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत॥ 2॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्॥ 3॥

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति?
द्वितीयं तृतीयं तꣳ होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति॥ 4॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किꣳ स्विद् यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति॥ 5॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः॥ 6॥

अर्थ—वाजश्रवा ने एक यज्ञ किया, जिसमें उसने अपना सब धन दे दिया। नचिकेता नाम का एक पुत्र था उसका॥ 1॥

वह अभी कुमार (अल्प वयस्क) ही था। वह दान-दक्षिणा जो श्रद्धा-भक्ति से (ऋत्विकों और ब्राह्मणों को) दी जा रही थी, उसे देख ऐसा विचार (नचिकेता के) मन में उत्पन्न हुआ— ॥ 2॥

गउएँ जो जल पी चुकी हैं, घास खा चुकी हैं, जिनका दूध दुहा जा चुका है, जो शक्तिहीन हैं (अर्थात् बूढ़ी हो चुकी हैं अथवा मरणासन्न हैं);

(नचिकेता के मन में विचार आया कि) जो इन बूढ़ी गउओं का दान करता है उसे परलोक में आनन्द प्राप्त नहीं होता॥ 3॥

वह (इतना विचार कर और यह विचार कर कि पिता ने सब-कुछ दान देने का संकल्प किया है, पिता के सामने जाकर) बोला, 'पिताजी! आप मुझे किसको दे रहे हैं?'

(पिता समझा नहीं तो उसने) दूसरी बार पूछा और तीसरी बार भी पूछा। इस पर पिता ने (क्रोध में) कहा—तुम्हें मृत्यु को दूँगा॥ 4॥

(पिता की बात सुनकर पुत्र मन में विचार करने लगा) कई से मैं आगे हूँगा (अर्थात् वह बहुतों से अभी छोटा है, अभी मरने के योग्य नहीं है), कई से मैं मध्य में हूँगा (अर्थात् मरनेवालों के मैं बीच में हूँ, अभी मरने योग्य नहीं हूँ।) (यम का) क्या काम है मुझसे, जो (पिता) मुझे उसके पास भेज रहे हैं?॥ 5॥

जो हमसे पहले जा चुके हैं उनको देखकर और जो अब मरने जा रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको देखकर मैं भी यम के पास जाता हूँ। मरनेवाले मनुष्य तो खेत की उपज की भाँति हैं। अन्न पककर गिर जाता है और फिर उत्पन्न हो जाता है। (ऐसे ही मनुष्य का जन्म-मरण है) अतः इससे मुझे भय नहीं है॥ 6॥

उपनिषत्कार ने कथा तो बनाई है परन्तु वह ठीक बन नहीं पाई। कथा को समझने के लिए बहुत-कुछ कल्पना करनी पड़ती है। कोई अनुवादक भिन्न कल्पना भी कर सकता है। यह कहानी लिखने का ढंग नहीं है।

हम समझते हैं कि लेखक जब किसी विषय पर लिखने लगे तो ऐसे लिखना चाहिए जैसे अपने लेख के विषय को किसी सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति को समझाना है। ऐसा लेख जिसमें के कई अंश कहने से छूट गए हों, किसी अनाड़ी का लिखा ही माना जा सकता है, और फिर ऊपर लिखे के उपरान्त कहानी का क्रम सर्वथा टूट गया है।

नचिकेता ने ऊपर की बात विचार कर क्या किया, इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। श्लोक 1-1-6 के उपरान्त श्लोक 1-1-7 इस प्रकार—

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैताᳶ शातिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्॥ 7॥

अर्थ—ब्राह्मण अतिथि बनकर ऐसे पहुँचता है, जैसे वैश्वानर अग्नि (निःशंक) सर्वत्र पहुँच जाती है। उस अग्नि को शान्त करने के लिए हे वैवस्वत! तू जल ले जा॥ 7॥

श्लोक सात की संगति श्लोक छः के साथ कुछ भी प्रतीत नहीं होती। कौन किसको कह रहा है और क्यों कह रहा है, यह स्पष्ट नहीं है।

भाष्यकारों ने कहानी की संगति इस प्रकार बैठाई है कि नचिकेता पिता के घर से चलकर यम के द्वार पर ऐसे जा पहुँचा जैसे अतिथि होता है। अतिथि बिना किसी प्रयोजन के धर्मोपदेश करने जाता है। धर्म और शास्त्रों में ऐसी प्रथा बताई है। परन्तु नचिकेता यम के द्वार पर उपदेश करने नहीं गया था, अतः कथा ठीक नहीं बनी है। उसने बताया नहीं कि नचिकेता यम के द्वार पर कैसे पहुँचा और वैवस्वत कौन है, तथा यम कौन है?

हमारा अभिप्राय यह है कि इस प्रकार की असंगत कहानियाँ लिखकर लेखक ने विषय स्पष्ट नहीं किया, प्रत्युत पाठक को भ्रमित ही किया है।

इस कथा की आवश्यकता नहीं थी। यम को बीच में लाने की आवश्यकता भी नहीं थी। सीधा ही उपनिषद् का प्रवचन गुरु-शिष्य के संवाद के रूप में आरम्भ किया जा सकता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा ठीक नहीं बनी और इसका परिणाम यह हुआ है कि पौराणिक गाथा-शैली का अधूरा रूप उपनिषद् में ले-आने का यत्न हो गया है।

यहाँ इतना और लिख दिया जाए तो उचित है कि हमने उपनिषद् की इस भूमिका के लेखों को श्लोक कहा है, क्योंकि यह लेख न तो मन्त्र के पद के योग्य हैं न ही ये श्रुति कहे जा सकते हैं। किसी पुराण के-से श्लोक मात्र ही हैं।

भाष्यकारों ने कल्पना की उड़ानें आरम्भ कर दी हैं और वैवस्वत के पुत्र और उसके काल में वाजश्रवः और उसके पुत्र नचिकेता की कहानी बना डाली है।

वैवस्वत का पुत्र यम पौराणिक लेखों के अनुसार त्रेतायुग के आरम्भ में हुआ था, अतः नचिकेता को भी उस काल का व्यक्ति बताया जाता है। कुछ लेखकों ने तो इस प्रकार की कथा के लेख को मन्वन्तर की काल-गणना से जोड़ना आरम्भ कर दिया है।

हमारा मत है कि उपनिषद् का यह भाग सर्वथा अनभिज्ञ व्यक्ति का कहा हुआ है और पाठकों को भ्रमित करनेवाला है। इसका उपनिषद् के विषय के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

आशाप्रतीक्षे संगतꣳ सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूꣳश्च सर्वान्। एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे॥ 8॥

अर्थ—जिसके घर में अतिथि बिना खाने के रहता है, उसकी आशाओं और प्रतीक्षाओं, उसकी सम्पत्ति, उसकी मीठी और सत्यवाणी, उसकी इष्टपूर्ति, उसके सब पुत्र और सुख नष्ट हो जाते हैं।

उपनिषत्कार के कहने का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि यह कोई, किसी स्थान का नरेश-समान क्षत्रिय गृहस्थ था। वह उत्पन्न होने अथवा मरनेवालों की आत्माओं को कहीं नियंत्रण में रखता है। और नचिकेता एक ब्राह्मणकुमार उसके घर पहुँच गया है। उस समय यम घर पर नहीं था। उस यमराज के घर में भी कोई नहीं था जो इस ब्राह्मणकुमार से पूछता और उसको बता देता कि यम महाराज घर पर नहीं हैं। अतः नचिकेता को यम के द्वार पर भूखे-प्यासे यम के लौट आने की प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस ब्राह्मणकुमार के यम के द्वार पर तीन दिन बिना अतिथि-सत्कार के पड़ा रहने पर यम को चिन्ता लग गई और अपने इस दोष के प्रायश्चित्त के लिए उसने नचिकेता को तीन वर दे दिये।

कथा का यह रूप सब असंगत और अनावश्यक है। यह उपनिषद्-पाठ में भी नहीं है। भाष्यकारों की कल्पनामात्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व॥ 9॥

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माऽभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं मामभिवदेत् प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ 10॥

अर्थ—हे ब्राह्मण! तुम्हें नमस्कार हो। तेरा कल्याण हो। तुम माननीय अतिथि होकर भी मेरे घर में तीन दिन तक बिना खाए-पिए पड़े रहे हो, इसके प्रतिकार में तुम्हें तीन वर मैं देता हूँ। तुम जो चाहो माँगो।

हे मृत्यो! मैं पहला वर यह माँगता हूँ कि मेरे पिता गौतम मेरे प्रति शान्त स्वभाव, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जाएँ। यहाँ से लौटने पर वह मुझे पहिचान लें और मुझसे बातचीत करें।

यथा पुरस्ताद भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखः रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात् प्रमुक्तम्॥ 11॥

अर्थ—मुझसे प्रेरित औद्दालक आरुणि फिर वैसा ही प्रतीति वाला होगा, जैसे पहले था। वह सुख से रात सोएगा और क्रोधरहित हो जाएगा। वह तुम्हें मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देख प्रसन्न होगा।

यहाँ भी अनुपयुक्त कथा कहने का प्रयास हुआ है। नचिकेता के पिता के दो अन्य नाम लिख दिये हैं—औद्दालक और आरुणि। इन नामों का अर्थ है उद्दालक का पुत्र और अरुण का पुत्र।

उद्दालक का पुत्र अथवा अरुण का? इस कथन ने भाष्यकारों को भिन्न-भिन्न अनुमान लगाने का अवसर दिया है। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि उद्दालक और अरुण एक नहीं थे। औद्दालक उद्दालक ही है और उनका कहना है कि वह उद्दालक का बनाया हुआ पुत्र था और अरुण का औरस पुत्र था।

एक अन्य भाष्यकार ने कहा है कि उद्दालक उसका पिता था और अरुण माता थी।

हमारा मत है कि यह कथा सर्वथा काल्पनिक है और कल्पना करनेवाले का इतिहास से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। यह हम इस कारण कहते हैं कि भारत के इतिहास लिखनेवालों ने उपनिषदादि ग्रन्थों की ऐसी कथाएँ कहकर भारत के इतिहास को कल्पित करने का यत्न किया है।

एक बात इस (1/1-11) श्लोक से विदित होती है कि लेखक यह प्रकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहा है कि नचिकेता पृथिवी पर अपना शरीर छोड़कर यम-द्वार पर गया था। इसी कारण यम ने वर दिया था कि वह जब पिता के पास जाएगा तो उसका पिता उसे पहिचानकर उससे स्नेह करेगा अर्थात् वह पुनः अपना शरीर प्राप्त कर लेगा।

एक बात निश्चित है कि इस कथा का उपनिषद् के विषय से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, अतः हम इसे व्यर्थ का प्रयास मानते हैं।

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ 12॥

यह प्रश्न नचिकेता ने किया है। यह दूसरे वर के प्रतिकार में है। यह इस प्रकार है—

अर्थ—स्वर्गलोक में कुछ भी भय नहीं। वहाँ आपका बस भी नहीं चलता। वृद्धावस्था का भी भय नहीं। वहाँ (आत्मा) भूख को पार कर, शोक से ऊपर उठकर आनन्दित होता है।

स त्वमग्निः स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वः श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण॥ 13॥

अर्थ—आप स्वर्ग-प्राप्ति के साधनभूत अग्नि (पुरुषार्थ) को जानते हैं, अतः मुझ श्रद्धालु को उस उपाय का वर्णन कीजिए, जिसके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हुए पुरुष अमर हो जाते हैं। यह मैं दूसरा वर माँगता हूँ।

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं गुहायाम्॥ 14॥

अर्थ—स्वर्ग-प्राप्ति की अग्नि अर्थात् साधन जो करना होता है, वह मैं जानता हूँ और तुझे बताता हूँ। वह मुझसे समझ। वह अग्नि एक गुहा में रखी हुई है। अनन्त लोक की प्राप्ति करानेवाली वहाँ प्रतिष्ठित है।

इस मन्त्र (1-1-14) से वास्तविक विषय आरम्भ होता है।

नचिकेता का प्रश्न था कि वह अग्नि (शक्ति अथवा साधन) जिससे स्वर्गलोक प्राप्त हो, वह कहाँ है और यम कहता है कि वह गुहा में स्थित है।

यहाँ गुहा से अभिप्राय शरीर के मस्तिष्क में उपस्थित एक छोटा-सा स्थान है जहाँ बैठा प्राणी का आत्मा शरीर पर नियन्त्रण रखता है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से उस छोटे-से स्थान में भी उपस्थित होता है और जीवात्मा तथा शरीर पर नियन्त्रण रखने के साधन, मन तथा बुद्धि भी वहाँ रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषत्कार का अभिप्राय है कि जीवात्मा के पास वहाँ पर ही एक वस्तु है, जिसकी सहायता से वह स्वर्ग प्राप्त कर सकता है।

मन्त्र में शब्द है 'अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठा'। इसका अभिप्राय है अनन्त लोक (ब्रह्मलोक) की प्राप्ति करानेवाला और प्रतिष्ठा (आधार) उस गुहा में उपस्थित है। प्राप्ति करानेवाली है बुद्धि और उसका आधार है ज्ञान। प्राप्ति होती है अनन्त लोक (ब्रह्मलोक) की और वह प्राप्ति होती है जीवात्मा को।

प्राणी के मस्तिष्क में एक गुहा है, जिसे ब्रह्मसूत्र में दहर कहा है। उस दहर-स्थान में मन, बुद्धि तथा जीवात्मा रहते हैं। जीवात्मा ब्रह्मलोक को प्राप्त करना चाहता है। ब्रह्मलोक का मार्गदर्शन करानेवाली बुद्धि है। मार्गदर्शन का आधार मन है और इनके प्रयास का आधार है परमात्मा, जो सर्वज्ञ होने के कारण वहाँ दहर में भी है। मन, बुद्धि और परमात्मा तीनों ही आधार हैं ब्रह्मलोक पाने के।

मन और बुद्धि जीवात्मा की, ज्ञान तथा मार्गदर्शन से, सहायता करते हैं, परन्तु मन का सामर्थ्य और बुद्धि का सामर्थ्य परमात्मा के दिये हुए हैं। इस कारण इस पूर्ण प्रयास में परमात्मा ही आधार है।

अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा मन तथा बुद्धि मनुष्य को श्रेष्ठ मिले होते हैं, इस पर भी सामान्य पुरुष का सामर्थ्य स्वर्ग (मोक्ष) प्राप्त करने में योग्य नहीं होता।

मन तथा बुद्धि को परिमार्जित करने का ढंग है योगाभ्यास। पतञ्जलि मुनि कहते हैं—

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥

(योग द० 2-1)

अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर का आश्रय योगाभ्यास का व्यावहारिक रूप है।

तप करता है मन। स्वाध्याय का प्रभाव होता है बुद्धि पर और परमात्मा की सहायता से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्मसूत्र में भी आत्मा-परमात्मा को उस गुहा में प्रविष्ट कहा गया है। वहाँ कहा है—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥

(ब्र० सू० 1-2-11)

अर्थ—शरीर की गुहा में दो आत्मा उपस्थित होते हैं। यह युक्ति से पता चलता है।

उपनिषत्कार ने कहा है कि इस गुहा में ही स्वर्ग की अग्नि (साधन) उपस्थित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ 15 ॥

अर्थ—यम ने नचिकेता को उस अग्नि के विषय में बताया जो लोकों का आदि कारण है। उस अग्नि को जलाने के लिए (हवनकुण्ड में) जो ईंटें लगती हैं वे भी बताई हैं। वे ईंटें कितनी हैं और कैसे लगाई जाती हैं, यह भी बताया है।

जैसा यम ने बताया था, नचिकेता ने वैसे उसे सुना दिया। (बालक के द्वारा) बात को ठीक-ठीक दुहरा देने पर यम अति प्रसन्न हुआ और उसने आगे कहा—

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां
गृहाण ॥ 16 ॥

अर्थ—(नचिकेता के द्वारा बात को ठीक-ठीक दुहरा देने से) प्रसन्न होकर बोला—अब मैं तुम्हें एक वर और देता हूँ। वह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। और तू इसके अनेक रूपों वाले मार्गों को भी ग्रहण करे ॥ 16 ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत्तरति
जन्ममृत्यू। ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा
निचाय्येमाꣳ शान्तिमत्यन्तमेति ॥ 17 ॥

अर्थ—जिसने तीन बार नचिकेता-अग्नि का चयन किया है और जो तीनों से मेल को प्राप्त होकर तीन बार कर्मों को करनेवाला है, वह जन्म-मृत्यु को पार कर जाता है। ब्रह्मयज्ञ को और विद्वानों से स्तुति किये हुए (परमात्मा) को जानकर निश्चय से वह परम शान्ति को पा लेता है ॥ 17 ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद् विदित्वा य एवं विद्वाꣳश्चिनुते
नाचिकेतम्। स मृत्युपाशान्तपुरतः प्रणोद्य शोकातिगो
मोदते स्वर्गलोके ॥ 18 ॥

अर्थ—जो नचिकेताग्नि की इन तीन प्रक्रियाओं को जानता है और इसका चयन करता है वह मृत्यु के बन्धनों को परे फेंककर शोक से ऊपर उठकर स्वर्गलोक में प्रसन्न रहता है ॥ 18 ॥

कुछ-एक भाष्यकारों का मत है कि मन्त्र 16, 17 और 18 पीछे जोड़े गए हैं। इसका अभिप्राय यह है कि कठशाखा में, जिसका यह उपनिषद् है, ये मन्त्र नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि पूर्व-उपनिषद् में भी नहीं थे। पीछे किसी ने इनका प्रक्षेप किया है।

इस विवाद में न पड़ते हुए हम यह कह रहे हैं कि इन मन्त्रों के अर्थ ठीक करते हुए भी इनके भाव का वर्णन कोई भी भाष्यकार ठीक-ठीक नहीं कर सका।

तीन-तीन के झमेले में प्रायः सब भाष्यकार भटक गए प्रतीत होते हैं। पहले तो यह समझ लेना चाहिए कि उपनिषद् में (मन्त्र 1-1-14 में) यह कहा है—

'अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं गुहायाम्॥'

अनन्त लोक (मोक्ष) प्राप्ति के लिए और उसमें प्रतिष्ठित होने के लिए तुमको इस गुहा में निहित को जानना चाहिए।

हमने इसी मन्त्र की विवेचना में बताया है कि गुहा मनुष्य के मस्तिष्क में बहुत छोटा-सा स्थान होता है जहाँ जीवात्मा, मन तथा बुद्धि के साथ रहता है। वहाँ परमात्मा भी सर्वव्यापक होने से उपस्थित होता है। ये तीनों शक्तियाँ हैं जिनको जान लेने और भली-भाँति समझ लेने से अनन्त लोक की प्राप्ति होती है।

मन्त्र संख्या 1-1-15 में लोकों अर्थात् जगत् के कारण-भूत ईंधन (अग्नि) का और उसमें लगी ईंटों का वर्णन किया है और बताया है कि वे ईंटें किस प्रकार लगी हैं।

यह जगत् का कारण-भूत अग्नि क्या है? वे तीन अनादि पदार्थ हैं—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। ये तीन इस लोक के कारण हैं अर्थात् मूल हैं। यही तीन ईंटें हैं जिनसे यह जगत्-रूपी वेदी (स्थान) बनी है।

अब बात जब नचिकेता के हृदय में बैठ गई तो यम ने प्रसन्न हो आगे कहा— मैं तुम्हें एक और वर देता हूँ। वह यह कि ये तीन अग्नियाँ तुम्हारे नाम से जानी जाएँगी।

कौन-सी तीन अग्नियाँ? वही जो ऊपर के मन्त्र में बताई हैं, जो इस जगत् की कारण (मूल) हैं।

यहाँ भाष्यकारों मे गड़बड़ की है। प्रायः भाष्यकार स्वामी शंकराचार्य की परिपाटी के अनुयायी हैं, अतः वे प्रकृति और जीवात्मा को तो मानते नहीं और इस कारण इन तीन की गणना में कहीं माता, पिता, आचार्य की बात कहने लगे हैं और कहीं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ की बात कहते हैं। हम इस विवेचना को अशुद्ध मानते हैं। माता-पिता की संगत् से अथवा ब्रह्मचर्यादि आश्रमों से अनन्त लोक की प्राप्ति नहीं होती। हाँ, इस संसार के ज्ञान (अर्थात् परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति के ज्ञान) से और यह जानने से कि ये ईंटें कहाँ-कहाँ लगी हैं और इन तीनों का परस्पर क्या सम्बन्ध है, मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म का योग मोक्ष-प्राप्ति माना है, अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया है और इस ग्रन्थ में परमात्मा, जीवात्मा तथा प्रकृति के सम्बन्धों का ही वर्णन किया है। अतः हमारा मत है कि नचिकेता का अर्थ इनके ज्ञान से ही है। सर्वप्रथम प्रसिद्ध जगत् से ब्रह्म (तीनों अक्षर पदार्थों) की प्राप्ति होती है। साथ ही कहा है—**सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण** (कठो० 1-1-16)। इसका अर्थ भाष्यकारों ने किया है अनेक रूपवाली माला ग्रहण कर।

सृङ्कां का अर्थ मार्ग भी है। हम समझते हैं कि इस अग्नि को जो लोक-लोकान्तर की कारणभूत है, जानने के अनेक मार्ग हैं। यहाँ उन मार्गों का ही वर्णन है। उपनिषत्कार ने तो यह ही कहा है कि वह अग्नि प्राणी की गुहा में विद्यमान है, वह जगत् का आदि कारण है और उसके जानने के कई मार्ग हैं। भाष्यकारों ने स्वामी शंकराचार्य की लकीर पीटने का कार्य किया है।

मन्त्र 1-1-17 में कहा है तीन बार नचिकेता-अग्नि का चयन कर तीन बार सन्धि (सम्बन्ध) बनाने से और तीन बार कर्म करने से जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

इसका अभिप्राय है प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा का पृथक्-पृथक् ज्ञान प्राप्त कर, इन तीनों से पृथक्-पृथक् सम्बन्ध बना और फिर उस सम्बन्ध में तीन प्रकार के कर्मों को करके जन्म-मरण के बन्धन को पार कर जाता है।

माता, पिता, आचार्य की आज्ञा का पालन इस संसार में सुखकारक हो सकता है, परन्तु मोक्ष-प्राप्ति के लिए तो ब्रह्मज्ञान की ही आवश्यकता है। वह माता-पिता के द्वारा हो, आचार्य के द्वारा हो अथवा तप एवं स्वाध्याय से हो, यह पृथक् बात है। मूल बात है इन तीन मूल पदार्थों का ज्ञान, इनका परस्पर सम्बन्ध और उस सम्बन्ध के आधार पर कर्म। स्वामी शंकराचार्य ने आत्मा, प्रकृति को शून्य करने के लिए माता, पिता, आचार्य और कर्मों में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ की बात कर दी। परन्तु सब-कुछ परमात्मा ही है, एक अनुपयुक्त सिद्धान्त होने से स्वामीजी का अनुकरण मिथ्या पथ है।

तीन अग्नियाँ हैं प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा। तीनों के अपने-अपने गुण, कर्म और स्वभाव हैं। इनको जान लेने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। वेद (यजुः 40-14) में भी स्पष्ट लिखा है कि अविद्या और विद्या दोनों को जानने से मोक्ष प्राप्त होता है। विद्या से अभिप्राय अनादि तीन पदार्थ हैं।

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण। एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व॥ 19॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(यम ने कहा—) हे नचिकेता! स्वर्ग के साधन-सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर मैंने दे दिया है। यह दूसरे वर में था। अब तू तीसरा वर माँग॥ 19॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके। एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः॥ 20॥

अर्थ—मरे हुए मनुष्य के विषय में जो संशय है कि कोई कहते हैं—'है' और कोई कहते हैं कि 'नहीं है', आप मुझे बताइये जिससे मैं जान सकूँ। यह वरों में मेरा तीसरा वर है॥ 20॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्॥ 21॥

अर्थ—पूर्वकाल में यह सन्देह देवताओं को भी हुआ था। यह सूक्ष्म धर्म सुगमता से जानने योग्य नहीं। इस कारण हे नचिकेता! कोई दूसरा वर माँग ले। मुझे विवश न कर। यह प्रश्न छोड़ दे॥ 21॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ 22॥

अर्थ—हे मृत्यो! यदि देवताओं में भी इस विषय पर सन्देह है और आप कहते हैं कि इसका जानना सुगम नहीं, तब तो सत्य ही इस जैसा कोई दूसरा वर नहीं हो सकता और आप जैसा कोई अन्य संशय निवारण करनेवाला नहीं मिलेगा॥ 22॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्। भूमेर्महदायतनं वृणीष्व त्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥ 23॥

अर्थ—(यम ने नचिकेता को टालने के लिए कहा) सौ-सौ वर्ष की आयु वाले पुत्र और पौत्र, बहुत-से पशु और हाथी, सोना तथा घोड़े वर में माँग ले। भूमि बहुत लम्बी-चौड़ी और अपने लिए इतनी लम्बी आयु जितनी तू चाहता है, माँग ले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167891

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥ 24॥

अर्थ—इसके समान यदि तू कोई वर उचित समझता है तो माँग ले अथवा धन और चिरस्थायी जीविका माँग ले। हे नचिकेता! इस विस्तृत भूमि में तू बुद्धि को प्राप्त हो। मैं तुम्हें कामनाओं की इच्छानुसार माननेवाला कर सकता हूँ॥ 24॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाःश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥ 25॥

अर्थ—मनुष्य-लोक में जो-जो कामनाएँ दुर्लभ हैं उन सब कामनाओं को अपनी इच्छानुसार माँग ले। सुन्दर स्त्रियाँ, रथों और बाजों सहित हैं, ये सब मनुष्यों को प्राप्त नहीं होतीं। मेरे द्वारा तुम इनको प्राप्त कर लोगे। परन्तु तू मरण-सम्बन्धी इस प्रश्न को न पूछ॥ 25॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते॥ 26॥

अर्थ—हे यमराज! ये भोग जो कल तक ही स्थिर रहनेवाले हैं, सब इन्द्रियों के तेज को जीर्ण करते हैं। यह सारा जीवन भी बहुत छोटा ही है। आपके वाहन और नाच-गाने आपके पास ही रहें। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं॥ 26॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव॥ 27॥

अर्थ—मनुष्य को धन से तृप्त नहीं किया जा सकता। अब यदि आपको देख लिया है, तो धन तो मुझे मिल ही जाएगा। जब तक आप शासन करेंगे, हम जीवित रहेंगे। परन्तु मेरा माँगा वर तो वही है जो मैं कह चुका हूँ॥ 27॥

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन् मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत॥ 28॥

अर्थ—न बूढ़े होनेवाले मुक्त आत्माओं का साथ छोड़कर बूढ़ा होनेवालों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ कौन रहेगा? इन रंग-रूप के भोगों को तत्त्व से जाननेवाले के लिए तेजहीन और नाशवान् का चिन्तन कौन करेगा? ॥ 28 ॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥ 29॥

अर्थ—हे मृत्यो! वह (लोक) जिसके विषय में लोक संशय करते हैं, और जो महान् परलोक (मोक्षधाम) है, उसके विषय में बताइए। मुझे कोई दूसरा वर नहीं चाहिए।

इस वल्ली में जो मुख्य बात कही गई है वह केवल यह है कि शिष्य गुरु द्वारा जानना चाहता है कि स्वर्गलोक मोक्षधामादि क्या और कहाँ हैं अथवा हैं भी कि नहीं। हैं तो कैसे प्राप्त किये जाते हैं?

पहले यह प्रश्न पूछा गया था कि वह अग्नि कहाँ है, जिससे अनन्त लोक (मोक्षधाम) की प्राप्ति होती है। इस अग्नि अर्थात् अनन्त लोक (मोक्षधाम) की प्राप्ति के लिए जो अग्नि जलाई जाती है, वह कहाँ जलाई जाती है। उस कुण्ड में कितनी ईंटें लगानी चाहिएँ।

इसका अभिप्राय है कि मोक्ष-प्राप्ति का साधन क्या है और उस साधन के क्या-क्या अंग हैं?

इसका उत्तर उपनिषत्कार ने यम के मुख से यह दिलवाया है कि इस अग्नि का तीन बार चयन करनेवाला मनुष्य, उनसे तीन बार सम्बन्ध बनाकर ही अग्नि प्रदीप्त कर सकता है।

हमने बताया है [illegible] पनिषत्कार ब्रह्मलोक की प्राप्ति का उपाय योगाभ्यास को बता रहा है। ती[illegible] उपाय करना पड़ेगा। उनसे तीन बार सम्बन्ध बनाने के तीन स्थान हैं और प्रत्येक स्थान से तीन बार सम्बन्ध बनाना होता है। तीन स्थान हैं यम, नियम और साधना। प्रत्येक स्थान पर तप से, स्वाध्याय से और ईश्वरप्रणिधान से सम्बन्ध बनाना पड़ता है। इन सब का वर्णन योगदर्शन में है।

इस उपनिषद् के प्रायः भाष्यकारों ने इस सब का अभिप्राय यह बताया है कि माता, पिता और आचार्य से पढ़कर ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ में यत्न करो। यह बात हम ठीक नहीं समझते। यह सब-कुछ करणीय है परन्तु मोक्षधाम प्राप्त करने के लिए इतना पर्याप्त नहीं। योगदर्शन भी यही कहता है कि तप अर्थात् कार्यसिद्धि के लिए निरन्तर स्वाध्याय अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति का यत्न करना चाहिए, परन्तु सदैव परमात्मा के आश्रय अपने को छोड़कर। यम तथा नियम का पालन करते हुए तथा साधना से अभिप्राय यह है कि धारणा, ध्यान और समाधि से सिद्धि प्राप्त होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गीता में एक अन्य मार्ग भी बताया है। वह है निष्काम भाव से कर्म करना।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं—नियत, नैमित्तिक और निष्काम। इन तीनों प्रकार के कर्मों को मन से, बुद्धि से और निष्काम भाव से करने पर मोक्ष प्राप्त होता है। अतः तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, तीन ही साधन हैं।

यह है तीन प्रकार से तीन स्थानों पर अग्नि प्रदीप्त करने का अभिप्राय। तीन साधन हैं, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। तीन स्थान हैं, प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा। तीनों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

द्वितीया वल्ली

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषꣳ
सिनीतः। तपोः श्रेय आददानस्य साधु भवति
हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते॥ 1॥

अर्थ—एक श्रेय है और दूसरा प्रेय है। ये दोनों विभिन्न प्रयोजन वाले होते हुए भी पुरुष को बाँधते हैं। इन दोनों में जो श्रेय को ग्रहण करता है उसका भला होता है, और जो प्रेय को ग्रहण करता है वह अपने उद्देश्य से गिर जाता है।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति
धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो
योगक्षेमाद् वृणीते॥ 2॥

अर्थ—श्रेय और प्रेय, परस्पर मिले हुए होकर, मनुष्य को प्राप्त होते हैं। धीर अर्थात् बुद्धिमान् उनको देखकर, उनकी परीक्षा करता है, उनमें भेद करता है। बुद्धिमान् प्रेय पर श्रेय को उपमा देता है, परन्तु मूर्ख योगक्षेम के लिए प्रेय को श्रेय पर उपमा देता है।

स त्वं प्रियान्प्रियरूपाꣳश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।
नैताꣳ सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो
मनुष्याः॥ 3॥

अर्थ—हे नचिकेता! तुमने प्यारी और प्यारे रूपवाली कामनाओं को विचार-पूर्वक त्याग दिया है। तुमने उस मार्ग की अवहेलना की है जिनमें प्रायः मनुष्य डूब जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा
बहवोऽलोलुपन्त॥ 4॥

अर्थ—जो अविद्या और विद्या रूप से जानी गई हैं वे दोनों अत्यन्त विरुद्ध स्वभाववाली और विपरीत फल देनेवाली हैं। हे नचिकेता! मैं तुमको विद्या का अभिलाषी मानता हूँ, क्योंकि तुमको कामनाओं में लगाया नहीं जा सका।

प्रश्न यह था कि इस लोक में मरने के उपरान्त जो लोक है, वह है अथवा नहीं? इसका अभिप्राय यह था कि मनुष्य मृत्यु के उपरान्त पुन: जन्म लेता है अथवा नहीं, और यदि लेता है तो कहाँ और कैसे? उसका ही उत्तर यम देने लगा है।

मरने के उपरान्त दो प्रकार की गतियाँ होती हैं, अत: दो प्रकार के कर्म हैं जो जीवात्मा में गति उत्पन्न करते हैं। उनका वर्णन किया जाने लगा है। इस कारण उपनिषत्कार ने कर्मों का वर्णन इस प्रकार आरम्भ किया है। एक प्रकार का कर्म श्रेय कहाता है और दूसरे प्रकार के कर्मों को प्रेय कहा है। उपनिषत्कार ने इसका एक दूसरा नाम भी बताया है—विद्या और अविद्या।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि वेद में भी विद्या और अविद्या दो शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में इनका कथन है। परन्तु वहाँ विद्या और अविद्या का वह अर्थ नहीं जो इस उपनिषद् में किया गया है। हम ईशावास्योपनिषद् के भाष्य में यह व्याख्या-सहित बता आए हैं। वहाँ अविद्या उन पदार्थों के ज्ञान को कहा है जो नाशवान् हैं, अर्थात् जो अक्षर और अमर नहीं हैं। वेद में विद्या का अर्थ है परमात्मा, जीवात्मा और मूल प्रकृति का ज्ञान तथा अविद्या का अर्थ है प्रकृति के परिणामी पदार्थों का ज्ञान।

परन्तु यहाँ इस उपनिषद् में अविद्या उन पदार्थों के ज्ञान को कहा है जो इन्द्रियों के विषयों को उत्तेजित करनेवाले हैं, और विद्या उन पदार्थों के ज्ञान को कहा है जो मनुष्य का वास्तविक कल्याण करनेवाले हैं। उपनिषत्कार का अभिप्राय है जिससे आत्मा मरणोपरान्त उत्कृष्ट मार्ग को जाता है।

इस विषय में ब्रह्मसूत्रों में भली-भाँति समझाया है। वहाँ कहा है—

अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम्।
संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात्।
विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात्।
न तृतीये तथोपलब्धे:। *(ब्र० सू० 3-1-12, 13, 17, 18)*

इन सूत्रों का अभिप्राय है कि अनिष्टादि कर्म करनेवाले भी सुने जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या सुने जाते हैं ?

वे नियमनवाली योनियों में कर्मफल भोगकर ऊपर उठते हैं। वे स्वर्गलोक को नहीं जाते। मनुष्य-योनि तक ही पहुँचते हैं॥ 13॥

जो स्वभाव से विद्या-युक्त कर्म करते हैं, वे ही ऊपर को उठते हैं॥ 17॥

तीसरा कोई मार्ग नहीं है॥ 18॥

उपनिषत्कार का भी कहना है कि श्रेय और प्रेय दो प्रकार के कर्म हैं। और अविद्या परस्पर विपरीत मार्गों पर जानेवाली है।

यजुर्वेद में जिन विद्या-अविद्या का वर्णन है, वे साथ-साथ भी चल सकती हैं। वेद का कहना है कि दोनों के ज्ञान से ही मनुष्य का कल्याण सम्भव है। विद्या से इस संसार से पार होकर अविद्या से जन्म-मरण से मुक्ति मिल सकती है।

परन्तु उपनिषत्कार ने अविद्या का अर्थ लिया है इन्द्रियों के सुख-भोग, और विद्या का अर्थ लिया है आत्मा का कल्याण। अतः दोनों को पृथक्-पृथक् समझना चाहिए। वेद की भाषा में और उपनिषद् की भाषा में यहाँ अन्तर है।

नचिकेता ने इन्द्रिय-सुख स्वीकार नहीं किये, इस कारण गुरु उसे अध्यात्म की शिक्षा देने लगा है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना
यथान्धाः॥ 5॥

अर्थ—अविद्या में विचरनेवाले अपने-आपको बहुत बड़े बुद्धिमान् मानते हैं। ऐसे मूढ़ व्यक्ति अन्धे की भाँति अन्धे से ले-जाए जाते हुए ठोकरें खाते हैं।

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति परं इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे॥ 6॥

अर्थ—जो धन के मोह से मोहित होकर बुद्धिभ्रष्ट हो रहा है, उस मूर्ख को परलोक दिखाई नहीं देता। वह समझता है कि यही लोक है; इसके अतिरिक्त कोई नहीं। ऐसा माननेवाला लौट-लौटकर यम के वश में आता है॥ 6॥

यम का अभिप्राय परमात्मा ही है। यम का शाब्दिक अर्थ है नियन्त्रण में रखनेवाला। वह परमात्मा ही है। परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने में स्वतंत्रता दे रखी है। परन्तु जो इन्द्रियों के अधीन, उनके सुख और आराम को ही परम लक्ष्य मानकर जीवन व्यतीत करते हैं, वे उन योनियों में जन्म लेते हैं जो मानवेतर हैं और अपने व्यवहार में स्वतंत्र नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, उनका मन और बुद्धि इतने दुर्बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं कि वे अपना मार्ग स्वयं निश्चय नहीं कर सकते।

वे मूढ़ जो इस लोक के सुख-स्वादों को ही सब-कुछ मानते हैं, वे इस यमन (नियन्त्रण) की योनियों में बार-बार जाते हैं। वे मानव-जीवन नहीं पाते, जिसमें जीवात्मा को अपना मार्ग-निर्माण करने की स्वतंत्रता होती है।

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥ 7॥

अर्थ—यह (ब्रह्मविद्या) बहुतों को तो सुनने को भी नहीं मिलती। सुननेवालों में भी बहुत कम हैं जो इसे समझ पाते हैं। इसे समझनेवाला बहुत ही कुशल पुरुष समझना चाहिए। कोई बहुत ही निपुण व्यक्ति इसे समझ सकता है।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान्
ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥ 8॥

अर्थ—यह (आत्मा) जब किसी अज्ञानी पुरुष से बताया (समझाया) जाता है तो इसे समझना सुगम नहीं है, चाहे उस पर कितना ही विचार किया जाए। जब तक इसको बतानेवाला कोई अनन्त ज्ञानी (विशेष ज्ञान रखनेवाला) न हो तब तक इसके जानने का कोई मार्ग नहीं।

यह आत्मा इतना सूक्ष्म है कि यह प्रमाण और तर्क में नहीं आता।

यहाँ पर उपनिषत्कार से हमारा मतभेद है। यह तो ठीक है कि आत्मा प्रमाण का विषय नहीं है। प्रमाण से अभिप्राय है प्रत्यक्ष प्रमाण।

प्रमाण तीन प्रकार के हैं। सांख्य दर्शन और न्याय दर्शन, इस विषय में उपनिषद् से स्पष्ट मतभेद रखते हैं। उदाहरण के रूप में सांख्य दर्शन कहता है—

द्वयोरेकतरस्व वाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत्तत् त्रिविधं प्रमाणम्॥ *(सां० द० 1-87)*

अर्थ—दोनों का अथवा उनमें से एक का, पूर्व अज्ञात अर्थ का निश्चयात्मक ज्ञान प्रमा है। इसको जो सिद्ध करता है वह प्रमाण कहाता है। ये तीन प्रकार के हैं।

और आगे यही दर्शनशास्त्र कहता है—

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः॥ *(सां० द० 1-88)*

अर्थ—इन (तीन प्रकार के प्रमाणों) से सिद्ध होने पर और अधिक सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि सबकी सिद्धि इन तीन प्रमाणों से हो सकती है। ये प्रमाण हैं प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आप्त।

स्थूल पंचभौतिक पदार्थों से लेकर अहंकार तक की सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण से हो सकती है। परन्तु अक्षर पदार्थों की सिद्धि जिनमें प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा हैं प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं होती। इसके लिए अनुमान प्रमाण है। अनुमान प्रमाण ही तर्क है।

उपनिषत्कार ने कहा है कि आत्मा इतना सूक्ष्म है कि न प्रमाण से जाना जा सकता है न तर्क से। अतः उपनिषत्कार से इस बात में हमारा मतभेद है।

जीवात्मा सूक्ष्म है, यह ठीक है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण से नहीं जाना जा सकता, यह भी ठीक है; परन्तु प्रमाण तीन प्रकार के हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्त। जीवात्मा अनुमान से भी जाना जा सकता है और आप्त प्रमाण से भी।

आप्त का अर्थ है विशेष ज्ञान रखनेवाला। उसके लिए उपनिषत्कार ने शब्द 'नहितर्क' का प्रयोग किया है। हमारा इसमें मत है कि आत्मा का ज्ञान तर्क से भी होता है। तर्क ही अनुमान प्रमाण कहाता है।

न्यायदर्शन यह सिद्ध करता है कि जीवात्मा है। वह कहता है—

इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥

अर्थ—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और चेतना ये आत्मा के लिंग हैं।

इनसे आत्मा की सिद्धि होती है। लिंग उन गुणों को कहते हैं जो लिंगी (पदार्थ) में हों और जो लिंगी के अतिरिक्त किसी अन्य में न हों।

जिस पदार्थ में उक्त छह गुण हों उसमें जीवात्मा होता है।

हम समझते हैं कि उपनिषत्कार को कदाचित् सांख्य और न्याय का ध्यान नहीं रहा था, जब उसने उक्त बात कही थी।

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा॥ 9॥

अर्थ—यह ज्ञान तर्क से नहीं मिलता। यह किसी दूसरे द्वारा बताया हुआ ही समझने के योग्य है। यह तुमको प्राप्त है। तू धीर (बुद्धिमान्) है। हे नचिकेता! तेरे जैसा पूछनेवाला हो, तो चित्त प्रसन्न होता है।

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि
नित्यम्॥ 10॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(यम की बात सुनकर नचिकेता ने कहा) मैं यह जानता हूँ कि यह जो नाम (ख्याति) निधि (धन) है सब अनित्य है, और जो ध्रुव (नित्य) है वह अस्थायी साधनों से प्राप्त नहीं होता। इसी कारण मैंने नचिकेता-अग्नि का चयन किया (समझाया) है और यह अनित्य के द्वारा नित्य की प्राप्ति हुई है।

यहाँ उपनिषत्कार ने नचिकेता के मुख से कहलाया है कि उसे नित्य पदार्थों का ज्ञान अनित्य के ज्ञान से हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि जगत् से जगत् के कारणों का ज्ञान हुआ है।

ब्रह्मसूत्र में कहा है—

जन्माद्यस्य यतः ॥ *(ब्र०सू० 1-1-2)*

अर्थात् जिससे यह जगत् बना, पल रहा है और प्रलय होता है, वह ब्रह्म है।

अर्थात् इस नाशवान् जगत् से अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है। यही नचिकेता ने कहा है।

नचिकेता ने अग्नि के चयन (समझने) से नित्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया। जगत् तीन प्रकार के पदार्थों के संयोग से बना है। वे हैं प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा। इन तीनों को पृथक्-पृथक् और फिर इनके परस्पर संयोग को समझना, इसे ही नचिकेता ने अग्नि का नाम दिया है। यह नचिकेता ने समझा और कहते हैं कि इसी से वह जान गया कि अनादि अक्षर कहाँ और कैसे हैं।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो
नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः ॥ 11 ॥

अर्थ—हे नचिकेता! तुमने सारी कामनाओं की पूर्ति, जगत् की प्रतिष्ठा, (भोगों का) फल और संसार में भय के अन्त का किनारा पा लिया है। स्तोम-यज्ञ (स्तुति—जगत् के गुण-कर्म-स्वभाव का ज्ञान) प्राप्त कर लिया है। प्रतिष्ठा और सुख का ज्ञान प्राप्त किया है। इस पर भी एक धीर (बुद्धिमान्) की भाँति सब छोड़ दिया है ॥ 11 ॥

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं, गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकौ
जहाति ॥ 12 ॥

अर्थ—उस कठिनता से दीख पड़नेवाले गूढ़ (गहरे) स्थान में प्रविष्ट होकर गुहा (एक सूक्ष्म छोटे-से स्थान) में स्थित सुरक्षित स्थान पर ठहरा हुआ पुरातन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष (जीवात्मा) अध्यात्म-योग (आत्मा के आत्मा से संयोग) के द्वारा देव (परमात्मा) को जानकर हर्ष-शोक (एक धीर पुरुष) त्याग देता है।

उपनिषत्कार का आशय स्पष्ट ही है। वह कह रहा है कि एक पुरातन पुरुष छुपे हुए गहरे स्थान में स्थित है। वह अध्यात्म-योग (आत्मा के आत्मा से संयोग) के द्वारा देव को जानकर हर्ष एवं शोक से रहित हो जाता है। पुरातन का अर्थ अनादि तत्त्व जीवात्मा है और देव से अभिप्राय है परमात्मा। इन दोनों का योग उस स्थान पर होता है, जहाँ पुरातन पुरुष छुपे हुए गहरे सुदृढ़ स्थान पर ठहरा हुआ है। ऐसा ही वेद में और दर्शनशास्त्रों में वर्णन किया है।

ब्रह्मसूत्र में तो स्पष्ट कहा है—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥ *(ब्र०सू० 1-2-11)*

अर्थ—गुहा में स्थित दो आत्माओं की सिद्धि है (दर्शनात्) देखने से। अभिप्राय है युक्ति (तर्क) से सिद्ध होने से।

स्वामी शंकराचार्य इस उपनिषद् का अर्थ करते हैं—

गुहाहितं गुहाय, बुद्धौ स्थितं तत्रोपलभ्य मानत्वात्।

(ब्र०सू० 1-2-11)

अर्थ—गुहा—बुद्धि में उपलब्ध होने के कारण उसी में उपलब्धि होने से। वह गुहा का अर्थ बुद्धि करते हैं। यह अशुद्ध है। उन्होंने यह अशुद्ध अर्थ केवल इस कारण किया है कि कहीं परमात्मा से पृथक् जीवात्मा की सिद्धि न हो जाए।

उपनिषद् में 'पुराणाम्' पुरातन पुरुष कहा है (यह क्या ?) अध्यात्म-योगाधि-गमेन—अध्यात्म के योग होने से। अर्थात् आत्मा का आत्मा से योग (संयोग) होने पर 'देव' जाना जाता है और धीर पुरुष हर्ष-शोक से रहित हो जाता है।

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयꣳ हि लब्ध्वा विवृतꣳ सद्म नचिकेतसं मन्ये॥ 13॥

अर्थ—ऐसा सुनकर और उसको भली प्रकार ग्रहण कर जिस मनुष्य ने धर्म गुण वाले (शरीर) को पृथक् करके (परमात्मा को) पा लिया है, वह आनन्दमय को प्राप्त कर अति आनन्दित हो जाता है (मोक्ष प्राप्त कर लेता है)।

हे नचिकेता! मैं समझता हूँ कि तेरे लिए मोक्ष का द्वार खुला हुआ है। गुहा में परमात्मा से साक्षात्कार होने से जीवात्मा शरीर से पृथक् हो परम आनन्द को पाता है।

अन्यत्र धर्म्मादन्यत्राधर्म्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद॥ 14॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—(नचिकेता कह रहा है) जो धर्म से, अधर्म से, किये हुए से और न किये हुए से (करने योग्य से और न करने योग्य से), भूत और भविष्य से दूसरी स्थिति है, जिसे आप जानते हैं, वह मुझे बताइये (उसका उपदेश दीजिये)।

यम ने कहा कि जब गुहा-स्थान पर जीवात्मा का परमात्मा से योग हो जाता है तो फिर वह जीवात्मा शरीर से पृथक् होकर परम आनन्द की स्थिति में पहुँच जाता है।

नचिकेता उसी स्थिति के विषय में पूछ रहा है। उसका प्रश्न है कि जिस स्थिति में कुछ भी करणीय नहीं रह जाता (भूत, भविष्य, करने योग्य और न करने योग्य कुछ भी नहीं रह जाता) वह स्थिति कौन-सी है, उसे बताएँ।

नचिकेता का अभिप्राय यही है कि इस मर्त्यलोक में इच्छाएँ, कामनाएँ रहती हैं। उनसे प्रेरित होकर मनुष्य कर्म करता है। मोक्षधाम में क्या है? साथ ही मोक्षधाम में काल-दिशा कुछ भी नहीं होती। उस धाम में करने योग्य कर्म क्या होता है? यह उसका प्रश्न है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण
ब्रवीम्योमित्येतत्॥ 15॥

अर्थ—सब वेद जिस पद (स्थान) का वर्णन करते हैं, समस्त तपों को जिसकी सिद्धि का लक्ष्य कहा जाता है, जिसकी इच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है, उस पद को, मैं तुम्हें संक्षेप से कहता हूँ। वह पद 'ओं' (परमात्मा का स्थान) है।

यह माना जाता है कि परमात्मा सर्वव्यापक है और मोक्ष-प्राप्त आत्मा उससे मिल जाता है, जैसे जल में नमक मिल जाता है। जल में घुले नमक के परिमण्डल (atom) जहाँ-जहाँ जल होता है वहाँ-वहाँ जा सकते हैं। इसी प्रकार मुक्त जीवात्मा जहाँ-जहाँ परमात्मा है, वहाँ-वहाँ पहुँच सकता है।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥ 16॥

अर्थ—यह अक्षर ब्रह्म है। यह अक्षर परम है। इस अक्षर को जानकर जो पुरुष कुछ चाहता है, वह उसे पा जाता है।

एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनꣳ ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ 17॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—यही श्रेष्ठ आश्रय-स्थान है। यह महान् आश्रय-स्थान है। इस आश्रय-स्थान को जानकर जीवात्मा महिमावान् होता है।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ 18॥

अर्थ—यह चेतन (जीवात्मा) न पैदा होता है, न मरता है, न कभी पहले उत्पन्न हुआ था, न अब हुआ है।

यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। यह नष्ट नहीं होता। नष्ट होनेवाला तो शरीर है।

यद्यपि उपनिषत्कार ने लिखा नहीं परन्तु इन मंत्रों के अर्थों से यह स्पष्ट है कि ये मंत्र (1-2-17, 18) परमात्मा और जीवात्मा के विषय में हैं। इनमें कहा है कि अक्षर (जिसको मंत्र 1-2-16 में परम अक्षर कहा है) को जानकर जो इच्छा करे वह प्राप्त हो जाता है। यह अक्षर परमात्मा के लिए ही कहा है।

और मंत्र 1-2-18 में जीवात्मा का वर्णन है। मंत्र 1-2-17 से भिन्न बात इसमें कही है। कहा है कि वह नहीं मरता, शरीर मरता है; अथवा जिसका शरीर के साथ सम्बन्ध बनता रहता है वह नहीं मरता।

प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं होता?

हमारा मत है कि होता है परन्तु उसका सम्बन्ध किसी विशेष शरीर से नहीं होता। उसका सम्बन्ध सब शरीरों से है।

भगवद्गीता में कहा है—

इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः॥
क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥

(भ०गी० 13-1, 2)

अर्थ—यह शरीर क्षेत्र है और इसको जो जानता है वह क्षेत्रज्ञ है। और मुझ (परमात्मा) को भी जानो। मैं (परमात्मा) सब क्षेत्रों को जानता हूँ।

इस क्षेत्रज्ञ के विषय में जो जानता है, वही ज्ञानी है।

कहने का अभिप्राय यह है कि परमात्मा का भी शरीरों से सम्बन्ध है। परन्तु परमात्मा का विश्व के सब शरीरों से सम्बन्ध है और जीवात्मा का केवल एक शरीर से सम्बन्ध है। इस कारण जब कहें कि अजन्मा कभी मरता नहीं, मरता शरीर है तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह जीवात्मा के विषय में ही कहा है जिसका मरनेवाले से सम्बन्ध है।

परमात्मा सर्वव्यापक होने से मरनेवाले और न मरनेवाले सब शरीरों से सम्बन्ध रखता है।

यह लेखन-शैली में त्रुटि है कि विषय बदलने पर संकेत नहीं दिया गया। एक का वर्णन करते-करते दूसरे का वर्णन, बिना संकेत के, आरम्भ हो गया है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुः हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ 19॥

अर्थ—मारनेवाला यदि (आत्मा को) मारने का विचार करता है और मारे जानेवाला समझता है कि (आत्मा) मारा गया है, तो दोनों ही उसको (जीवात्मा को) नहीं जानते। यह न तो मारता है न मारा जाता है।

अणोरणीयान् महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥ 20॥

अर्थ—यह अणु से भी सूक्ष्म है और (जगत् की) बड़ी से बड़ी वस्तु से बड़ा है। आत्मा के शरीर की गुहा में स्थित है।

उस (गुहा में) अक्रतु (अकर्ता) को देखता है। (देखने पर) वह शोकरहित हो जाता है। उस पर उस महान् आत्मा का अनुग्रह हो जाता है।

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं यदन्यो ज्ञातुमर्हति॥ 21॥

अर्थ—वह ठहरा हुआ भी है और दूर तक गया हुआ भी है। एक स्थान पर लेटा हुआ है और सब स्थान पर है। कौन उस देव (परमात्मा) को जो आनन्दित है और (अमद) अभिमानरहित है, जान सकता है मेरे सिवाय (उस आत्मा के सिवाय जिसे परमात्मा गुहा में दीखता है)?

इस मंत्र में भी दो (तत्त्वों) का वर्णन है। एक वह है जो स्थित भी है और चलायमान भी है, जो लेटा हुआ भी है, सब स्थान पर पहुँचा हुआ भी है। और दूसरा वह (जीवात्मा) है जो उसको जानता है। उपनिषत्कार ने कहा है कि मेरे अतिरिक्त उसे कौन जान सकता है? मेरे का अभिप्राय यम भी हो सकता है परन्तु ऊपर के मंत्र के सम्बन्ध से यह स्पष्ट है कि वह जीवात्मा है जो गुहा में उसके साथ रहता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषत्कार आत्मा-परमात्मा को (बिना किसी प्रकार का संकेत दिये) साथ-साथ लिख रहा है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि उपनिषत्कार की भाषा ढीली और अस्पष्ट है।

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ 22॥

अर्थ—शरीर में शरीर-रहित है, अस्थिर वस्तुओं में स्थिर है। उस महान् विभु आत्मा को जानकर धीर पुरुष शोक से परे हो जाता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूꣳ स्वाम्॥ 23॥

अर्थ—यह आत्मा प्रवचनों से (बताने से) प्राप्त होने योग्य नहीं है, न बुद्धि से, न सुनने से। हाँ, जिसको यह स्वयं वरण करता है उससे ही यह प्राप्त होता है। उसके समक्ष यह अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है।

नाविरतो दुष्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ 24॥

अर्थ—जो व्यक्ति दुराचार से हटा नहीं, जो अशान्त है, जो तर्क-वितर्क में उलझा हुआ है, जो चंचल चित्त वाला है, वह उसे प्राप्त नहीं कर सकता। वह 'प्रज्ञान' द्वारा प्राप्त किया जा सकता है॥ 24॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥ 25॥

ब्रह्म और ज्ञान जिसके ओदन (खाने के अर्थात् स्वीकार करने के गुण हैं) और मृत्यु इसका उपसींचन (सहायक पदार्थ है) कौन जानता है कि वह कहाँ है?॥ 25॥

इन मंत्रों की भाषा भी पूर्ववत् मंत्रों की भाँति शिथिल है। इस पर भी विचार करने पर इनके अर्थ स्पष्ट हो जाएँगे।

कहा है कि वह शरीर में शरीररहित है और चलायमान में स्थिर है। इसको एक वाक्यांश में कहा जा सकता है कि वह 'सर्वव्यापक' है परन्तु निर्लेप है। इसका अभिप्राय यह है कि वह सब वस्तुओं में और शरीर में भी है परन्तु किसी में लिप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उससे जुड़ा हुआ नहीं है।

आगे कहा है—वह कथन से नहीं जाना जा सकता। भाष्यकारों ने प्रवचन का अर्थ वेद किया है। पुराण, बाइबल, कुरान इत्यादि ग्रन्थ क्यों नहीं? उनमें भी जैसा-तैसा वर्णन परमात्मा का मिलता है। वस्तुतः इसका अभिप्राय यह है कि बातों से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती, न बुद्धि से, न किसी के कहने-सुनने से।

तो फिर किस प्रकार इसको जाना जा सकता है? ऊपर उपनिषत्कार कह चुका है कि इसको जान लेने से धीर पुरुष हर्ष-शोक से रहित हो जाता है। जान लेने से का क्या अभिप्राय है? जानने के साधन तो ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ही हैं। उपनिषत्कार का कहना यहाँ स्पष्ट नहीं (उसे जान लेने का अर्थ स्पष्ट बताना चाहिए था)।

हमारा विचार है कि इस सब में उपनिषत्कार का अभिप्राय यह है कि इन्द्रियों से, मन से और बुद्धि से जान लेना पर्याप्त नहीं। इन्द्रियादि की सामर्थ्यानुसार जान और समझकर उसको पा लेने की उत्कट इच्छा भी जीवात्मा में होनी आवश्यक है। इच्छा किसका गुण है? यह न तो इन्द्रियों का, न ही मन का और न ही बुद्धि का विषय है। यह आत्मा का लिंग (अनिवार्य गुण) है। यहाँ उपनिषत्कार यह बताने का यत्न कर रहा है कि केवल इन्द्रियों से जान लेना पर्याप्त नहीं, न ही मन से कल्पना करना पर्याप्त है। बुद्धि से समझ लेना कि वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अक्षर इत्यादि गुणोंवाला है, आवश्यक होते हुए भी, जिसमें उससे युक्त होने की प्रबल इच्छा होती है उसी जीवात्मा को वह वरण करता है अर्थात् वह स्वीकार करता है और तब वह व्यक्ति परमात्मा का लाभ (प्राप्त) कर लेता है।

आगे कहा है—

जिस व्यक्ति के मन में परमात्मा को पाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो जाती है वही उसको प्रिय हो जाता है, शान्त चित्त, स्थिर बुद्धि और मन वाला हो जाता है।

तर्क-वितर्क से ऊपर हो जाने का अभिप्राय यह है कि तर्क से ज्ञान अन्तिम निर्णय तक पहुँच जाता है। जब युक्ति से यह [जीव] परमात्मा और उसके गुणों को जान लेता है और उस युक्ति को न वह स्वयं रद्द कर सकता है न ही उस युक्ति को कोई अन्य काट सकता है, ऐसा व्यक्ति तर्क-वितर्क से ऊपर माना जाता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि युक्ति करने से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त नहीं होता। स्वामी शंकराचार्य यही मानते हैं। यह अशुद्ध है। मनुष्य पहले किसी परिणाम पर पहुँचता है। इस परिणाम पर पहुँचने के लिए ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान पर बुद्धि से विचार करना ही तर्क-वितर्क है। यह करना ही पड़ता है। परन्तु जो तर्क-वितर्क कर एक स्थिर सिद्धान्त तक पहुँच चुका है वह फिर उसको प्राप्त करने की इच्छा करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है। वह इच्छा जब अति प्रबल हो जाती है तब परमात्मा उसे अपनी ओर खेंच लेता है।

अन्त में कहा है कि परमात्मा का ओदन ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व है। ओदन (भोजन) ग्रहण किया जाता है। अतः, उपनिषत्कार का अभिप्राय है कि ब्राह्मण-स्वभाव के और क्षत्रिय-स्वभाव के आत्मा परमात्मा को स्वीकार होते हैं।

ब्राह्मण-स्वभाव का अभिप्राय तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वराश्रय में रहने से है, और क्षत्रिय-स्वभाव का अभिप्राय (भगवद्गीता के शब्दों में) 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय····' में लीन रहनेवालों से है।

इस प्रकार के आत्माओं को परमात्मा स्वीकार करता है।

एक बात इस उपनिषद् की विवेचना में आरम्भ से ही स्पष्ट है कि परमात्मा के अतिरिक्त भी एक आत्मा है जो परमात्मा से संयोग कर हर्ष-शोक से रहित होता है। वह परमात्मा सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, शुद्ध-बुद्ध-नित्य है और दूसरा (जीवात्मा) है जो उसका ज्ञान प्राप्त कर आनन्दित हो उठता है। नित्य वह भी है।

तृतीया वल्ली

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके, गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे। छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति, पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः॥ 1॥

अर्थ—दोनों ऋतों को पीते हुए, भले कार्य करने को लोक (मानव-शरीर) में, परम उत्कृष्ट स्थान गुहा में धूप-छाँव के समान प्रविष्ट हुए, पंचाग्नियों (पंच महायज्ञ—गृहस्थ धर्म) का भली प्रकार पालन किया है और नाचिकेताग्नियों का तीन बार चयन किया है, जिसने॥ 1॥

'ऋतों' को पीते हुए का अभिप्राय है प्राकृतिक नियमानुसार रहते हुए। ऋत प्राकृतिक नियमों को कहते हैं। वे नियम जिनके अनुसार सृष्टि-रचना होती है, उनका पालन होता है और उनका विनाश होता है। वेद में ऋत शब्द के सर्वत्र यही अर्थ हैं। कुछ लोग इसका अर्थ सत्य भी करते हैं। रचित जगत् भी सत्य है। इसी कारण उसके रचना, पालन, प्रलय के नियमों को भी सत्य कहा जाता है। रचित जगत् को सत्य बृहदारण्यक उपनिषद् (5-5-1) में कहा है, अतः ऋत सत्य ही है।

उपनिषत्कार का अभिप्राय है कि परमात्मा और जीवात्मा दोनों प्राकृतिक नियमानुसार मानव-शरीर के उत्कृष्ट स्थान, मस्तिष्क की गुहा में धूप-छाँह के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान प्रविष्ट हुए बैठे हैं।

इतना स्पष्ट कहकर भी भाषा अस्पष्ट ही है। धूप-छाँव की भाँति इन दोनों को कहा है। धूप और छाया दो पृथक्-पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं। एक के अभाव में दूसरी होती है। जहाँ धूप नहीं, वहाँ छाया है। वास्तव में धूप का अभाव ही छाया है। बच्चों की-सी बात कही है। अस्तित्व की, अभाव से समानता कर दी है।

इसी भाव को ब्रह्मसूत्र में स्पष्ट भाषा में इस प्रकार कहा है—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् *(ब्र० सू० 1-2-11)*

अर्थ—गुहा में प्रविष्ट दो आत्माएँ हैं। यह निश्चय युक्ति से होता है।

ब्रह्मसूत्र में इनको धूप-छाया नहीं माना। स्वामी शंकराचार्य मानते हैं कि ब्रह्म-सूत्र उपनिषदों के अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहे गए हैं, परन्तु वही शंकराचार्य ब्रह्मसूत्र द्वारा इस स्पष्ट कथन का हेर-फेर कर आत्मा और परमात्मा को एक ही मानते हैं।

हमारा यह मत है कि उपनिषदों में अनेक स्थानों पर भाषा अस्पष्ट है अन्यथा धूप और छाया को दो बातें न कहा जाता। छाया कोई वस्तु नहीं है। यह धूप का अभाव है; परन्तु जीवात्मा और परमात्मा दोनों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है। उपनिषत्कार स्वयं भी मान चुका है और आगे भी अनेक स्थानों पर स्वीकार करेगा।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि॥ 2॥

अर्थ—अक्षर परमब्रह्म को जानने की इच्छावाले, जो अभय होकर इस संसार को पार करना चाहते हैं, उनके लिए नाचिकेता अग्नि सेतु के समान है।

नाचिकेता अग्नि जैसा कि हम स्पष्ट कर चुके हैं, उस शक्ति को कहते हैं जिससे संसार बना है। इसकी तीन ईंटें हैं—परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। तीनों को पृथक्-पृथक् जानकर और तीनों का परस्पर सम्बन्ध जानने को इस उपनिषत्कार ने नाचिकेताग्नि का नाम दिया है। जगत् की इन तीन ईंटों को जान लेने से ब्रह्म का ज्ञान होता है।

इस उपनिषद् में कहा है कि ब्रह्म को जानने का यह उपाय भयरहित और जानने की इच्छावालों के लिए सेतु (साधन) है।

आत्मानꣳ रथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ 3॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—आत्मा (जीवात्मा) को रथवान् समझो और शरीर को रथ समझो। बुद्धि को सारथी और मन को लगाम जानो ॥ 3 ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ 4 ॥

अर्थ—मनीषी (मनन करनेवाले) इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को मार्ग कहते हैं, और इन्द्रिय तथा मन से युक्त आत्मा को भोक्ता कहते हैं। भोक्ता का अभिप्राय है कि कर्म करनेवाला और उसके फल को भोगने वाला ॥ 4 ॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ 5 ॥

अर्थ—किन्तु जो विज्ञानरहित है और जिसका मन सदा अयुक्त (असंयुक्त) होता है, उसकी इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रहतीं, जैसे दुष्ट घोड़े रथ के सारथी के वश में नहीं होते।

अब उपनिषत्कार जीवात्मा और उसका शरीर से सम्बन्ध बताने लगा है। इन (1-3-3, 4, 5) मन्त्रों में यह बताया है कि मनुष्य का शरीर रथ के समान है। इस शरीररूपी रथ पर रथी अर्थात् उसका स्वामी आत्मा है। बुद्धि रथ का सारथी है। सारथी के हाथ में मनरूपी लगाम है और इन्द्रियाँरूपी घोड़े हैं। मार्ग जिन पर रथ चलता है विषयरूप हैं।

विषय निकृष्ट और श्रेष्ठ दोनों प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार मार्ग किसी भले स्थान को जाने की दिशा में भी हो सकता है और बुरे स्थान को जाने की दिशावाला भी हो सकता है। अथवा, मार्ग सम तथा सरल भी हो सकता है और ऊँचे-नीचे गड्ढे वाला भी हो सकता है। अतः यदि सारथी बुद्धिमान् होगा और उसके हाथ सुदृढ़ता से लगामों को पकड़े हुए होंगे तो घोड़े नियन्त्रण में रहते हुए ठीक मार्ग पर चलेंगे। काम तब बिगड़ता है जब सारथी का नियन्त्रण ढीला हो जाता है। मन्त्र 1-3-5 में विज्ञान-रहित का अभिप्राय है कि जो बुद्धिरहित हैं अथवा जिनकी बुद्धि दुर्बल है, वे लगामों पर अर्थात् मन पर नियन्त्रण खो देते हैं और फिर घोड़े अर्थात् इन्द्रियाँ जिधर चाहें भाग खड़ी होती हैं। जो स्वाद और सुखकारक मार्ग (विषय) हैं उन पर इन्द्रियाँ चल पड़ती हैं।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ 6 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—जिसकी बुद्धि ठीक है (अर्थात् सारथी सावधान है) उसका मन (लगाम) पर नियन्त्रण है। वह वश में किये घोड़ों वाले सारथी की भाँति ठीक मार्ग पर चलता जाता है।

अभिप्राय यह है कि जो मन से युक्त होकर विज्ञानवान् होता है उसकी इंद्रियाँ इस प्रकार वश में हो जाती हैं जैसे सारथी के वश में घोड़े होते हैं।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ 7॥

अर्थ—जिसकी बुद्धि ठीक नहीं और जिसका मन नियन्त्रण में नहीं, वह सदा अपवित्र रहता है। वह व्यक्ति उच्च पद को प्राप्त नहीं कर सकता। वह संसार में ही लिप्त रहता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥ 8॥

अर्थ—वह जो बुद्धिमान् है, (श्रेष्ठ) मनवाला है और सदा पवित्र है, वह निःसन्देह उस पद को प्राप्त होता है जिससे फिर जन्म नहीं लेता॥ 8॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ 9॥

अर्थ—जिसका सारथी (बुद्धि) विवेकयुक्त है और मन को वश में रख सकता है, वह मार्ग के अन्त पर पहुँच जाता है। वह विष्णु का परम पद (ब्रह्म-लोक) पा जाता है॥ 9॥

मनुष्य में बुद्धि सर्वोपरि है। ऊपर के मन्त्रों में रथी को आत्मा और सारथी को बुद्धि बताया है, अर्थात् यदि बुद्धि सबल है और मन पर नियन्त्रण रख सकती है तो शरीर ठीक मार्ग जा सकेगा और उस रथ में बैठा हुआ रथी (जीवात्मा) विष्णु के धाम में पहुँच जाएगा। यदि बुद्धि दुर्बल तथा विवेकरहित है, तो रथी अर्थात् आत्मा संसार में भटकता रहेगा।

परन्तु यह चित्र पूर्ण नहीं। आगे कहा है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥ 10॥

अर्थ—इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय परे हैं। विषय से मन परे है। मन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि और बुद्धि से परे महान् आत्मा है ॥ 10 ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ 11 ॥

अर्थ—महान् (आत्मा) से परे परम अव्यक्त और उससे परे पुरुष है। पुरुष से परे कुछ नहीं। वह काष्ठा (सीमा) है। वह सबसे ऊँची गति है।

मन्त्र की विवेचना से पता चलता है कि उपनिषत्कार ने आत्मा को 'मिट्टी का माधो' बनाकर रथ पर (शरीर में) बिठाया हुआ है। बुद्धि ही सर्वोपरि कही है। उससे आगे उपनिषत्कार का कथन ढीला हो गया है।

वह कहता है कि विषयों से बलवान् इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियों से बलवान् मन है। मन से बलवान् बुद्धि है और बुद्धि से बलवान् आत्मा महान् है।

शब्द है 'महान्परः'। यह आत्मा का विशेषण भी हो सकता है और एक पृथक् शब्द भी हो सकता है। पृथक् होने की अवस्था में अर्थ होंगे—मन से परे (बलवान्) आत्मा है और उससे परे महान् है। महान् का अर्थ कुछ भाष्यकारों ने महत् किया है। महत् प्रकृति का प्रथम परिणाम है।

आत्मा से बलवान् महत् को मानें तो ऐसा किसी अन्य शास्त्र में नहीं कहा। न ही आत्मा से बलवान् प्रकृति के परिणाम महान् को मानना युक्तियुक्त है और फिर महान् से ऊपर परम अव्यक्त अर्थात् प्रकृति को कह दिया है। प्रकृति तो अचल शक्तिहीन है। प्रकृति का शक्तिशाली रूप तो महत् ही है। इसी कारण हम कहते हैं कि उपनिषद् का भाव ठीक होते हुए भी भाषा शिथिल है।

सांख्यदर्शन में महत् का स्थान इस प्रकार है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान्
महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं
तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥

(सां० द० 1-61)

सांख्यदर्शन में प्रकृति से क्रम इस प्रकार कहा है—

सत्त्व
रजस् — साम्यावस्था में प्रकृति है।
तमस्

प्रकृति ⟶ महान् ⟶ अहंकार (3) ⟶ पंच तन्मात्रा + दस इन्द्रियाँ (5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 5 कर्मेन्द्रियाँ)
अहंकार (3) ⟶ स्थूल महाभूत (5)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनसे पृथक् पुरुष पचीसवाँ गण है। पुरुष का अर्थ आत्मा है और उपनिषद् कह रहा है इन्द्रियाँ→विषय→मन→बुद्धि→आत्मा→महत्।

सांख्यदर्शन महत् को ही मन और बुद्धि मानता है। वहाँ कहा है—

महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः। *(सां० द० 1-71)*

अर्थ—जिसे महान् कहा जाता है, वह प्रकृति का पहला कार्य (परिणाम) है। वह मन है।

हमारे कथन का अभिप्राय यह है कि यदि भाष्यकारों का अर्थ लेंगे तो उपनिषत्कार का मत सांख्य के विपरीत हो जाएगा।

अतः, हमारा मत है कि मन्त्र 1-3-10 में अर्थ इस प्रकार ठीक बैठते हैं—इन्द्रियों से परे विषय हैं; विषयों से परे मन है; मन से परे बुद्धि है और बुद्धि से परे आत्मा है, जो महान् है।

यह शरीर की अवस्था बताई है। इसमें परमात्मा का कथन नहीं है।

भगवद्गीता में भी ऐसा ही कहा है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

(भ०गी० 3-42, 43)

अर्थ—इन्द्रियों से बलवान् मन है और मन से बलवान् बुद्धि है और बुद्धि से परे वह (आत्मा) है।

बुद्धि से परे (बलवान्) आत्मा को जानकर बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके दुर्जय कामनाओं को जीत लो।

'आत्मा से परे महत्' यहाँ भी नहीं कहा।

अतः उपनिषद् 1-3-10 का अर्थ है बुद्धि से परे महान् आत्मा है।

मन्त्र 1-3-11 में कहा है कि महत् से परे परम अव्यक्त है, अर्थात् प्रकृति है। इससे भाष्यकारों ने यह समझा है कि आत्मा से बलवान् महत् है। महत् से बलवान् अव्यक्त प्रकृति है और प्रकृति से परे महान् पुरुष है।

भाषा ढीली होने के कारण मिथ्या अर्थ किये गए हैं।

उपनिषत्कार का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि महान् आत्मा से व्यापक विभु, पूर्ण व्योम में फैली हुई अव्यक्त प्रकृति है और पुरुष (परमात्मा) उससे बलवान् है।

वास्तव में महत् से परे का अर्थ होना चाहिए, महान् आत्मा से अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक, विभु अव्यक्त प्रकृति है। इसी कारण हम कहते हैं कि उपनिषत्कार के शब्दों में त्रुटि है।

भाष्यकारों के अर्थ सर्वथा वेदशास्त्र-विरुद्ध हैं। आत्मा चेतन तत्त्व होने से महत् से अधिक बलवान् और जीव का आवश्यक अंग है। गीता का उद्धरण हमने दे ही दिया है। अतः क्रम इस प्रकार है—

इन्द्रियाँ→विषय→मन→बुद्धि→चेतन आत्मा→परमात्मा। इनके उपरान्त अव्यक्त प्रकृति के लिखने की आवश्यकता नहीं थी।

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ 12॥

अर्थ—इस जगत् में सब प्राणियों में प्रविष्ट आत्मा प्रकट नहीं होता। तीक्ष्ण और सूक्ष्म बुद्धि से जो अन्वेषणात्मक शक्ति रखते हैं वे इसे देख लेते हैं॥ 12॥

यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥ 13॥

अर्थ—बुद्धिमानों को चाहिए कि मन और वाणी को रोकें (नियन्त्रण में करें)। उनको प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करें। प्रकाशित बुद्धि को महान् आत्मा में और आत्मा को शान्त आत्मा (परमात्मा) में लीन करें॥ 13॥

मन्त्र 1-3-12 में आत्मा का अभिप्राय परमात्मा है और मन्त्र 1-3-13 में दो आत्माओं का वर्णन किया है। एक का संकेत महति शब्द से है। मन्त्र 1-3-10 में जीवात्मा का विशेषण महान् किया है और उससे ही यहाँ अभिप्राय है। दूसरा आत्मा शान्त आत्मा कहकर लिखा है जिसका अभिप्राय परमात्मा है।

जीवात्मा को परमात्मा से युक्त कर बुद्धि पर नियन्त्रण करो। बुद्धि से मन और वाणी पर नियन्त्रण करो। यहाँ वाणी से अभिप्राय सब इन्द्रियाँ हैं। यह शास्त्रीय परम्परा है कि एक इन्द्रिय का नाम लिखने से सब इन्द्रियों का अर्थ लिया जाता है।

ध्यान देने की आवश्यकता यह है कि विद्वान् आत्मा को महान् कहा है। इस मन्त्र में शब्द हैं—**ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।**

अन्य भाष्यकारों ने, यहाँ महत् को घुसेड़ने का यत्न किया है। हमारे विचारानुसार अर्थ है—(मन इन्द्रियों को) ज्ञानात्मा के साथ जोड़कर और ज्ञानात्मा को महान् आत्मा के साथ जोड़कर, इसे शान्त आत्मा के साथ जोड़ो। ज्ञानात्मा से अभिप्राय है बुद्धि; महानात्मा से अभिप्राय है जीवात्मा और शान्त आत्मा से अभिप्राय है परमात्मा। तब ही अर्थ ठीक बनते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ 14॥

अर्थ—उठो, जागो (अज्ञान से ज्ञान में आओ) और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप आकर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी लोग इस मार्ग (आत्मज्ञान) को इतना ही कठिन और भयावह मानते हैं जैसे छुरे की धार होती है।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्। अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥ 15॥

अर्थ—जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा अरस (स्वादरहित), नित्य, गन्धरहित है, अनादि और अन्त के बिना महत् (कार्य जगत्) से परे स्थित है, उस आत्मतत्त्व को जानकर मृत्यु के मुख से छूट जाता है॥ 15॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तः सनातनम्। उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥ 16॥

अर्थ—नाचिकेता अग्नि द्वारा प्राप्त तथा मृत्यु के कहे इस सनातन विज्ञान को कह और सुनकर बुद्धिमान् लोग ब्रह्मलोक में महिमान्वित होते हैं।

इस उपनिषद् में तीन अग्नियों को प्रदीप्त करने की बात कही गई है। वे अग्नियाँ हैं प्रकृति, जीवात्मा और परमात्मा।

जीवात्मा और प्रकृति का सम्बन्ध प्राणी के शरीर से होता है। इसीलिए इस तीसरी वल्ली में सिद्धान्तात्मक जीवात्मा का शरीर से सम्बन्ध वर्णन किया है।

शरीर की रथ से तुलना की है। शरीर से इन्द्रियों, मन और बुद्धि का सम्बन्ध बताया है। इन पर नियन्त्रण रखकर ही जीवात्मा अपनी जीवन-यात्रा पूर्ण कर सकता है। यात्रा है परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने की।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि। प्रयतःश्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति॥ 17॥

अर्थ—जो पुरुष इस रहस्यमय ग्रन्थ को शुद्ध हृदय से विद्वानों की सभा में अथवा श्रद्धा रखनेवालों की सभा में सुनाता है उसका यह कार्य अनन्त काल तक फल देनेवाला होता है। (ब्राह्मण का अर्थ विद्वान् है और श्रद्धा रखनेवाले से अभिप्राय है वह व्यक्ति जो श्रेयमार्ग पर चलना चाहता है।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

प्रथमा वल्ली

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ 1॥

अर्थ—स्वयम्भू परमात्मा के (इन्द्रियों के) छेदों के आगे (बाहर) की ओर छेद है। इस कारण मनुष्य आगे (बाहर के पदार्थों) को देखता है। भीतर अपने को नहीं देखता। कोई ही धीर (बुद्धिमान्) पुरुष अमृत को चाहता हुआ आँखों को बन्द कर भीतर आत्मा को देखता है॥ 1॥

(यही इसी उपनिषद् (1-3-1) में कह आए हैं कि भीतर दो आत्म-तत्त्व हृदय की गुहा में बैठे हैं। यहाँ इनकी ओर देखने का ही संकेत है।)

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते॥ 2॥

अर्थ—बाहर की कामनाओं की ओर बाल-बुद्धि भागते हैं। वे मृत्यु के बन्धनों (जन्म-मरण के चक्कर) में फँस जाते हैं। ये (बन्धन) सर्वत्र फैले हुए हैं। किन्तु विद्वान् अमरत्व को स्थिर गति समझ अनित्य संसार की इच्छा नहीं करता॥ 2॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्। एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत्॥ 3॥

अर्थ—जिससे रूप, रस, गन्ध, शब्द और मैथुन के सुखों को जानता है, उसी से यह भी जानता है कि क्या यहाँ पीछे रहता है। यह है वह, जिसके विषय में तूने पूछा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नचिकेता ने क्या पूछा था? नचिकेता का प्रश्न मन्त्र 1-1-29 में कहा है। वहाँ नचिकेता कहता है कि उसे बताया जाए कि किसके विषय में लोग संदेह करते हैं (जिज्ञासा करते हैं), किससे महान् साम्पराय (परलोक-सिद्धि) के लिए यत्न किया जाता है?

'साम्पराये' का अर्थ आप्टे के शब्दकोष में परलोक भी किया है, जिसके लिए यत्न किया जाता है। निःसन्देह वह यत्न करनेवाला जीवात्मा है।

कुछ भाष्यकारों ने 'साम्पराये' पद का अर्थ किया है महान्, यम-नियम पालन करना। कुछ अन्य ने अर्थ किया है जो महान् परलोक में है। अतः प्रश्न ही संदिग्ध हो गया है। जो महान् परलोक में है वह परमात्मा है। यम-नियम पालन किये जाते हैं जीवात्मा के कल्याण के लिए। वे परमात्मा के लिए नहीं हो सकते।

हम समझते हैं कि नचिकेता महान् परलोक के विषय में पूछ रहा है। न आत्मा के विषय में पूछ रहा है और न परमात्मा के विषय में पूछ रहा है।

इसका अर्थ यह हो सकता है कि परलोक किसको किस प्रकार प्राप्त होता है? दूसरे शब्दों में, परलोक में कौन किस प्रकार जाता है अर्थात् किस प्रकार जीवात्मा मोक्ष प्राप्त करता है।

अब देखना यह है कि यम क्या उत्तर देता है।

परन्तु दूसरे अध्याय के आरम्भ में यम ने कह दिया है कि जिसके द्वारा सांसारिक सुख निश्चय से जानता है उसके द्वारा जानता है कि इस लोक में क्या रह जाता है। अब प्रश्न यह है कि इन सांसारिक सुखों को कौन जानता है? क्या इन्हें परमात्मा जानता है? क्या इन्हें मन जानता है अथवा क्या इन्हें जीवात्मा जानता है? जो भी जानता है उसी के विषय में उपनिषत्कार ने कहा है 'एतद्वै तत्'—यह वह है जिसके विषय में पूछा गया है।

अर्थात् जीवात्मा जानता है कि मरने पर पीछे ये सुख नहीं रह जाते। किसके लिए नहीं रह जाते? इसी प्रश्न का उत्तर इस अध्याय में दिया जा रहा है। उपनिषत्कार बताना चाहता है कि वह जीवात्मा है।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ 4॥

अर्थ—जिसके द्वारा प्राणी स्वप्न में प्रतीत करता है और जागते हुए देखता (जानता) है, उस महान् और विभु आत्मा को जानकर बुद्धिमान् शोक नहीं करता, (अनिश्चित) नहीं रह जाता (विभु का अर्थ अक्षर लिया गया है)।

विभु का अर्थ परमात्मा भी है और अक्षर भी है। यहाँ परमात्मा का अर्थ नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, क्योंकि स्वप्न में प्रतीति परमात्मा को नहीं, जीवात्मा को होती है। परमात्मा स्वप्न नहीं लेता।

यं इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥ 5॥

अर्थ—प्राणी के भीतर, जो इस स्वाद लेनेवाले आत्मा को जानता है, वह भूत और भविष्य के स्वामी को भी जानता है। उसे किसी से ग्लानि नहीं होती। यही वह आत्मा है जिसके विषय में तूने पूछा है।

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वै तत्॥ 6॥

अर्थ—जो तपस्वी आदि काल में उत्पन्न हुए थे, और जो भली प्रकार जलों से उत्पन्न हुए, गुहा में प्रविष्ट होकर इन भूतों के द्वारा देख रहे हैं। वह आत्मा वही है जिसके विषय में तुमने पूछा है।

मन्त्र-2-1-5, 6 की भाषा ढीली है और इसी कारण भाष्यकारों ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है।

मन्त्र 2-1-6 का अर्थ यह है कि जो आदि युग में उत्पन्न हुए, ये हिरण्यगर्भ से नहीं हुए। ऐसा कुछ भाष्यकारों ने कहा है। जब सृष्टि में जीव-जन्तु उत्पन्न होने लगे तो यह तब हुआ, जब पृथिवी-सूर्य-अन्तरिक्षादि बन चुके थे। उस समय जीवात्मा जो प्रलयकाल में सुषुप्ति अवस्था में थे, वे वर्षा की भाँति पृथिवी की ओर आए। यहाँ वे तीन भूतों—अग्नि, वायु और जल की लपेट में आ गए। यह उनका सूक्ष्म शरीर बना। पीछे जब वे सूक्ष्म शरीर (शिरों) की भाँति पृथिवी पर बरसे तो पृथिवी के संयोग से उनके शरीर में पृथिवी और आकाश भी सम्मिलित हो गए और उनके शरीर पंचभौतिक हो गए। वेदों में और ब्रह्मसूत्रों में इसका वर्णन मिलता है। प्रमाण हम आगे चलकर देंगे।

सृष्टि-रचना में एक क्रम है जिसका वेद और सांख्यदर्शन में स्पष्ट रूप में वर्णन किया गया है। प्रथम अग्नि, जिसे वेद में अश्व अथवा अर्वः भी कहा है, वह उत्पन्न हुई और परमाणुओं पर बैठ गई। यह ऐसे बैठी जैसे घोड़े को लगाम लग जाती है। तब परमाणु की साम्यावस्था भंग हुई और इन्द्र जो परमाणु के भीतर छुपा था, बाहर आ गया। यह अग्नि का रूप वैश्वानर हो गया। तब गति उत्पन्न हुई। इसे वायु कहा है। इस गति से परमाणुओं के निबन्धन बन गए। इनको आपः कहा है। इससे पंचभौतिक रचना आरम्भ हो गई। पंचभूत बने तो पार्थिव पदार्थों के पिण्ड बन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए, जो नक्षत्र कहाए।

वैश्वानर अग्नि के बनने से लेकर पार्थिव पिण्ड बनने तक की क्रिया हिरण्यगर्भ में हुई। इसी के विषय में कहा है कि एक सौ देव-वर्ष तक यह कार्य चलता रहा। मनुस्मृति में इसे संवत्सर कहा है।

अब हिरण्यगर्भ फटा, पृथिवी (तथा अन्य ठोस पिण्ड), द्युः (चमकदारों) से दूर-दूर हो गए। जब ठोस पिण्ड ठण्डे हुए तो वहाँ प्राणी-सृष्टि हुई। ऐसा एक पिण्ड हमारी पृथिवी भी है। जब इस पर प्राणी-सृष्टि हुई तब जीवात्मा यहाँ आए (ऋ० 1-163-6)। जब जीवात्मा परमाणुओं के निबन्धनों के क्षेत्र में आता है तो तीन भूत तो अन्तरिक्ष में ही उसको लपेट लेते हैं (ब्र०सू० 3-1-2)। इन भूतों में एक जल है। यही उपनिषत्कार ने कहा है कि वे जलों में उत्पन्न हुए। उपनिषत्कार की भाषा में अस्पष्टता यह है कि उसने कहा है कि जलों में उत्पन्न हुए। भाष्यकारों ने कहा है जलों में (हिरण्यगर्भ में) उत्पन्न हुआ। हिरण्यगर्भ में जल अथवा जलीय पदार्थ नहीं होते। हाँ, वहाँ आपः (परमाणुओं के निबन्धनों=atomic particles) बने हैं और निघण्टु में आपः को उदक कहा है। जल भी उदकों में एक है, परन्तु उदक के अर्थ यास्क के अनुसार न तो जल है न ही आपः। उदक उनको कहते हैं जो चिपकनेवाले पदार्थ होते हैं। ये जलों के अतिरिक्त भी हो सकते हैं।

परन्तु हमारा विचार है कि उपनिषत्कार का अभिप्राय आपः से नहीं है। जलादि पंचभूतों में से तीन भूतों से है। गुहा में जाने से पूर्व जीवात्मा सूक्ष्म शरीर में होता है। उसमें पाँचों भूत नहीं होते; केवल तीन भूत होते हैं। इसे व्याख्या से न लिखने के कारण भाष्यकारों को अयुक्त कथन कहने का अवसर मिल गया है।

वस्तुस्थिति यह है कि आदि में जीवात्मा पृथिवी पर आए तो वे पहले तीन भूतों में लिप्त थे। तदनन्तर वे पंचभौतिक शरीर की गुहा में चले गए। सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के साथ तब तक लगा रहता है जब तक या तो जीव मुक्त नहीं हो जाता अथवा जब तक प्रलय में सब भूत पुनः परमाणुवत् नहीं हो जाते।

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत्॥ 7॥

अर्थ—जो (आत्मा) देवतामयी प्रकृति तथा प्राणों से संयुक्त होकर, गुहा में प्रविष्ट होकर महाभूतों से संयुक्त होता है, यह वही है॥ 7॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः। दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः। एतद्वै तत्॥ 8॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—जैसे दो अरणियों में जातवेदा अग्नि छुपी रहती है, जैसे गर्भिणी में गर्भ छुपा रहता है, वैसे ही। दिनानुदिन स्तुति के योग्य जागृत मनुष्यों द्वारा अग्नि परमात्मा है। वह वही है जिसके विषय में तुमने पूछा है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ 9॥

अर्थ—जहाँ से सूर्य उदित होता है अथवा जहाँ अस्त होकर जाता है, उसको सब देवता अर्पित हैं। उसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। बस यह वही है, जिसके विषय में तुमने पूछा है।

(यहाँ जीवात्मा के शरीर में आने-जाने को उदय तथा अस्त होना कहा है।)

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥ 10॥

अर्थ—जो वहाँ है, वही यहाँ है। जो यहाँ है, वही वहाँ है। जो वहाँ वाले और यहाँ वाले में भेद देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है।

इन मंत्रों के अर्थ भाष्यकारों ने अनेक प्रकार से किये हैं। इन भाष्यकारों को हम दो श्रेणी में बाँटते हैं। एक हैं स्वामी शंकराचार्य की परिपाटी के। वे तो यह समझते हैं कि इस पूर्ण उपनिषद् में परमात्मा को ही एक आत्मतत्त्व कहा है। कुछ अन्य भाष्यकार हैं जो यह जानते हैं कि इस वल्ली के मंत्र क्रमांक 1 से 4 तक में तो जीवात्मा का वर्णन है। उन मन्त्रों में जो वाक्य है एतद्वै तत्, उसका अर्थ है कि यह वह जीवात्मा है जिसके विषय में तुमने पूछा है। और मंत्र 5 से मंत्र 9 तक इस पद का अर्थ परमात्मा-परक है।

हमने जो अर्थ ऊपर किये हैं उनमें मंत्र 1 से 9 तक, सब में इस पद का अर्थ जीवात्मा-परक किया। इसमें कारण यह है कि नचिकेता का प्रश्न यह था कि मनुष्य के मरने के उपरान्त उसका क्या रह जाता है? कुछ कहते हैं कि वह ब्रह्मलोक को जाता है, कुछ कहते हैं नहीं। इस वल्ली के इन मन्त्रों में इसी प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा है। अतः यहाँ जीवात्मा के विषय में ही कहा जा रहा है कि किनका जीवात्मा ब्रह्मलोक को जाता है और किनका जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है। मंत्र क्रमांक 1-1-5 में हमने बताया है कि स्वाद लेनेवाला आत्मा प्राणी के भीतर से जान लेता है कि भूत और भविष्य का शासक वही है। यह इस विचार से है कि क्योंकि वह कर्म करने में स्वतंत्र है। भूत में उसने स्वतंत्रता से कर्म किये थे और वर्तमान में वह स्वतंत्रता से कर्म कर रहा है, जिससे उसका जीवन बन रहा है। उस आत्मा को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो प्राणी जानता है उसे आत्मग्लानि नहीं होती।

इसी प्रकार मंत्र 2-1-6 में कहा है कि जो तपस्वी (जीवात्मा) आदिकाल में उत्पन्न हुए अथवा जो अमैथुनीय सृष्टि से थे, वे सब-के-सब पूर्व-कल्प के पुण्यात्मा थे। वे जलों में उत्पन्न हुए। यहाँ जलों से अभिप्राय अग्नि, वायु आदि भूतों से है। हमने ब्रह्मसूत्र के उदाहरण से बताया है कि सूक्ष्म शरीर तीन भूतों का ही बना होता है। वह सूक्ष्म शरीर पंचभौतिक शरीर की गुहा में आकर बैठ जाता है। यही वेद में भी कहा है।

मंत्र 2-1-7 में कहा है कि जब देवतामयी अदिति अर्थात् प्रकृति प्राण से संयुक्त हो जाती है, अर्थात् प्रकृति से शरीर बन जाता है तो उस शरीर में जो गुहा बन जाती है वह गुहा भी पंचभूतों से (प्रकृति की) ही बनी है। वह आत्मा ही है जिसके विषय में तुमने पूछा है। यहाँ भाषा में अस्पष्टता यह है कि गुहा शब्द लिखकर भी संकेत नहीं किया है कि गुहा के विषय में कहा जा रहा है।

तदनन्तर मंत्र 2-1-8 में कहा है कि जैसे अरणियों में अग्नि छुपी रहती है, जैसे गर्भ में जीवात्मा सूक्ष्म-शरीर सहित छुपा रहता है, वैसे ही छुपा जीवात्मा बाहर से दिखाई नहीं देता।

मंत्र 9 में कहा है कि जहाँ सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है। प्रश्न है कि सूर्य कहाँ उदित होता है और कहाँ अस्त होता है ? वह तो उदय-अस्त होता नहीं। वह उदय-अस्त होता दिखाई देता है। वह तो स्थिर है। इसी प्रकार प्राणी में जीवात्मा कहाँ से आता और कहाँ जाता है, यह तो कोई जानता नहीं। केवल आता और जाता प्रतीत होता है। साथ ही कहा है कि सब देवता उस पर अर्पित हैं। देवता से अभिप्राय प्राण हैं। वे प्राण उस पर अर्पित हैं परन्तु वे प्राण जीवात्मा का उल्लंघन नहीं कर सकते। वे जीवात्मा के अधीन हैं। इस कारण यहाँ भी जीवात्मा का ही वर्णन है।

कथन में अस्पष्टता यह है कि सूर्य का उदय परमात्मा के बिगुल बजाने से नहीं होता। वह प्रकृति का अंश प्रकृति से ही उत्पन्न होता है और उसी में प्रलय-काल में अस्त होगा। यहाँ सूर्य की तुलना जीवात्मा से नहीं की है। जीवात्मा प्रकृति का अंश नहीं और सूर्य परमात्मा का अंश नहीं। परमात्मा की ऊर्जा (अग्नि) उसमें है, परन्तु वह स्वयं परमात्मा नहीं।

अगले मंत्र (2-1-10) में कहा है कि जो यहाँ है वही वहाँ है, जो वहाँ है वही यहाँ है। वहाँ वाले और यहाँ वाले में भेद नहीं है। जो भेद करता है वह जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है। हमारा यह सुनिश्चित मत है यह जो वहाँ और यहाँ कहा है, जीवात्मा के अतिरिक्त दूसरे आत्मतत्त्व के विषय में कहा है, परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा स्पष्ट नहीं।

मंत्र 1-3-1 में कहा है कि गुहा में दो आत्मतत्त्व हैं। अभी तक 1-3-1 से लेकर 2-1-3 तक एक आत्मतत्त्व (जीवात्मा) के विषय में ही कहा है। और इस आत्मतत्त्व का वर्णन करते हुए कहा है कि यह वही है जिसके विषय में तुमने पूछा है।

परन्तु मंत्र 2-1-10 में वर्णन दूसरे आमतत्त्व अर्थात् परमात्मा का है। इसी कारण इस मंत्र के अन्त में यह नहीं कहा कि यह वही है।

अतः यहाँ अभिप्राय है कि वह जो गुहा में है और वह जो सर्वत्र व्यापक है, दोनों एक ही हैं, उनमें अन्तर नहीं है। यह परमात्मा के विषय में कहा है। परमात्मा भी प्राणी की गुहा में जीवात्मा के साथ रहता है।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥ 11॥

अर्थ—मन से यह प्राप्त करने योग्य है; यह महान् अनेक नहीं है, एक ही है। जो इसको अनेक जानता है वह जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है।

यहाँ परमात्मा के विषय में कहा है। इस मंत्र में भी ''एतद्वै तत्'' पद नहीं है, परन्तु जो नहीं जानता और जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है वह परमात्मा नहीं, जीवात्मा ही है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥ 12॥

अर्थ—अंगुष्ठमात्र में पुरुष है। उसके मध्य में जीवात्मा ठहरता है। भूत-भविष्य का ईश्वर (पालक) है। उसको जानकर आत्मा को ग्लानि नहीं होती।

यहाँ इस मंत्र (2-1-12) में पुनः पद ''एतद्वै तत्'' का प्रयोग हुआ है। दो बातें इस मंत्र में समझने की हैं। प्रायः भाष्यकारों ने आत्मा को अँगूठे बराबर कहा समझा है। यह अशुद्ध अर्थ है। वास्तव में वह गुहा अंगुष्ठमात्र है जिसमें आत्मा स्थित है। परमात्मा तो सर्वव्यापक है, परन्तु जीवात्मा परमात्मा से उतना सम्पर्क में आता है जितनी गुहा है जिसमें जीवात्मा स्थित है। अंगुष्ठमात्र न तो आत्मा (जीवात्मा) है, न ही परमात्मा है। अंगुष्ठमात्र तो वह स्थान है जिसे गुहा कहते हैं। वह सीमा है जीवात्मा के हिलने-डोलने की। भाष्यकारों ने कहा है कि अंगुष्ठमात्र पुरुष हैं जिसके भीतर जीवात्मा स्थित है। यह अर्थ अशुद्ध है।

दूसरी बात यहाँ यह समझने की है कि इस मंत्र में ''एतद्वै तत्'' पद पुनः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा है। अतः यहाँ भी यह पद जीवात्मा के विषय में है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः॥ एतद्वै तत्॥ 13॥

अर्थ—यह अंगुष्ठमात्र पुरुष धूमरहित प्रकाशस्वरूप है। यह भूत-भविष्य का स्वामी है।

आज अथवा कल, उसी को जानना है। जाननेवाला वही है जो पूछा गया है।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति॥ 14॥

अर्थ—जैसे पर्वत की चोटी पर बरसा जल पर्वतों से कई धाराओं में बहने लगता है, वैसे (इन्द्रियों की) अनेक धाराओं में बहता हुआ अनेक दिशाओं में वह जाता है॥ 14॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥ 15॥

अर्थ—जैसे शुद्ध जल में शुद्ध जल मिलकर वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम (ज्ञान के अभिलाषी)! ज्ञानवान् का आत्मा होता है॥15॥

पहले की भाँति उपनिषद् की भाषा यहाँ भी अस्पष्ट है। इसी से भ्रम उत्पन्न होता है। पूर्व-वल्ली में दो तत्त्व बताए हैं।

नचिकेता ने पूछा था—मरने के उपरान्त मनुष्य का क्या होता है अर्थात् जो जीवात्मा है वह कहाँ जाता है? इसी का वर्णन इस (2-1) वल्ली में किया जा रहा है।

पूर्व-वल्ली में आत्मा को रथ का स्वामी बताया है और इस वल्ली में उस स्वामी की व्याख्या आरम्भ की है।

मंत्र 2-1-4 तक तो केवल जीवात्मा का वर्णन था, परन्तु मंत्र 2-1-5 में जीवात्मा के साथ दूसरे आत्मतत्त्व का भी वर्णन आरम्भ हुआ तो भाषा ढीली पड़ गई। इस मंत्र में कहा है कि स्वाद लेनेवाला आत्मा जब भूत-भविष्य के शासक को जान लेता है तो वह आत्मग्लानि से बच जाता है। आत्मग्लानि का अभिप्राय है आत्मपतन। भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वाद लेनेवाला भूत-भविष्य को जानता है। कुछ-एक भाष्यकारों ने ऐसा ही कहा है। परन्तु उपनिषत्कार का यह अभिप्राय नहीं है। यह भ्रम भाषा की अस्पष्टता के कारण है। शब्द है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मध्वदं"=मधु खानेवाला, और भाष्यकारों ने इसे परमात्मा सिद्ध करने के लिए यह कह डाला है कि मध्वरं का अर्थ है अमृत-भोगी। यह भाषा की अस्पष्टता के कारण है।

इसी कारण अगले मंत्रों में दूसरे आत्मा का वर्णन और उसके साथ जीवात्मा के सम्बन्ध की बात बताई है। परन्तु ऐसी ढीली भाषा में तो एक से दूसरे को पृथक् करना सहज नहीं। उपनिषत्कार ने संकेत नहीं दिया है कि कौन क्या है।

उदाहरण के रूप में मन्त्र 2-1-7 से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि देवता अथवा अदिति (प्रकृति) ही आत्मा है। यह अशुद्ध है।

मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—जब देवतामयी (देवताओं को रखनेवाली) प्रकृति प्राण (परमात्मा की शक्ति) से युक्त हो जाती है तो वह शरीर बनाती है और शरीर में गुहा भी बन जाती है। उस गुहा में जो तिष्ठित है वह आत्मा है जिसके विषय में पूछा गया है।

इसी प्रकार मंत्र 2-1-9 में कहा है कि जहाँ सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है—यहाँ भी जीवात्मा का वर्णन ही है। इस पर विवेचना ऊपर कर चुके हैं।

वास्तव में इस मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—जैसे सूर्य उदय और अस्त होता है वैसे ही जीवात्मा गर्भ में आता है और मरने पर शरीर से जाता दिखाई देता है। यह स्पष्ट नहीं किया गया कि वह सूक्ष्म शरीर में स्थिर है।

अन्त में मंत्र 2-1-14, 15 में भी भ्रम को स्थान है। मंत्र 2-1-14 में कहा है कि पर्वत के शिखर पर गिरा जल अनेक धाराओं में बह जाता है। इससे कुछ भाष्यकार यह समझते हैं कि परमात्मा अनेक जीवात्माओं में बँट जाता है। यह अर्थ सर्वथा अयुक्त है। परमात्मा विभक्त नहीं होता। विभक्त होता तो वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता। एक खण्ड और दूसरे खण्ड में स्थान रिक्त रह ही जाता है।

इसी प्रकार 2-1-15 में कहा है कि शुद्ध जल में शुद्ध जल मिल जाता है तो एक हो जाता है। इस विषय में ब्रह्मसूत्र का यह कथन है कि मुक्त जीवात्मा भी परमात्मा नहीं हो जाता (ब्र०सू० 2-4-9 से 19)।

द्वितीया वल्ली

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते। एतद्वै तत्॥ 1॥

अर्थ—शरीर के (जो जीवात्मा का निवास-स्थान है) ग्यारह द्वार हैं। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा अवक्र (सरल), चेतसः (ज्ञानवान्), अनुशासन रखने से शोक नहीं करता, कोई शोकजनक कार्य नहीं करता। शरीर छूटने पर मुक्त हो जाता है। यह वह है जिसके विषय में पूछा गया है ॥ 1 ॥

सामान्य रूप से मनुष्य-शरीर को नौ द्वारा वाला कहा जाता है। यहाँ इसके ग्यारह द्वार कहे हैं। अन्तर है ब्रह्मरन्ध्र और नाभि का। शेष नौ द्वार हैं—दो नासिकाएँ, दो आँखें, दो कान, एक मुख, एक गुदा और एक मूत्रद्वार। नाभि द्वार है गर्भ में बालक को माँ के रक्त के साथ संयुक्त करने का। ब्रह्मरन्ध्र है मृत्यु के समय प्राण के शरीर में से निकल जाने का द्वार।

**हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ 2 ॥**

अर्थ—शुद्ध स्थान में रहनेवाला हंस (निर्लिप्त जीवात्मा) है। वह वसु है। अन्तरिक्ष (हृदय-गुहा) में रहनेवाला है। वह संसार में ऐसे रहता है जैसे उसके कार्य यज्ञरूप हैं। वह अतिथि (शरीर को स्थायी निवास न समझनेवाला) और ज्ञान-दान के लिए अपने को सैमझनेवाला (है)। वह मानव-शरीर में रहता हुआ ऋतों (प्राकृतिक नियमों) का पालन करनेवाला, आकाश (गुहा) में जलों (पंच महाभूतों में) रहनेवाला है और वह देह (श्रेष्ठ जन्म) को पाता है। 'वर देह' से ऋत देह में जाता है (ऋत देह का अभिप्राय है नियमानुसार कार्य करनेवाला देह)। वह पृथिवी और पहाड़ों पर (आश्रमों में) रहता हुआ भी महान् ऋतों का जीवन व्यतीत करता है।

जो मनुष्य इस संसार में ऐसे निर्लिप्त रहकर जीवन व्यतीत करता है जैसे हंस जल में रहता हुआ जल से भीगता नहीं, जो अन्तरिक्ष में रहनेवाले वसु (देवताओं) की भाँति रहता है अर्थात् दिव्य गुण युक्त, सदा कल्याणकारी जीवन व्यतीत करता है, जो होता अर्थात् यज्ञ-रूप जीवन चलाता है (यज्ञरूप का अभिप्राय है निष्काम भाव से कार्य करनेवाला); अतिथि का अभिप्राय है कि वह जीवात्मा जो इस देह को स्थायी निवास नहीं समझता और अतिथियों की भाँति ज्ञान-अर्जन और ज्ञान-दान का कार्य करता रहता है, ऐसा जीवात्मा पंचभौतिक शरीर में रहता हुआ भी ऋतों का शरीर में पालन करता हुआ उन्नति करनेवाला होता है। वह चाहे पहाड़ों में रहे, चाहे मैदानों में रहे (पृथिवी का अभिप्राय है जो फैली हुई है अर्थात् मैदान है) और पहाड़ों पर रहने का अभिप्राय है ऋषि-मुनियों के आश्रमों में रहे—वह सब स्थानों पर रहता हुए ऋतों के अनुसार व्यवहार रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मंत्र में एक तपस्वी मनुष्य के जीवात्मा का चित्र खींचा गया है और कहा है कि ऐसा आत्मा हंस-समान हो जाता है और मरने पर मुक्त हो जाता है।

उपनिषद् का यह मंत्र ऋग्वेद (4-40-5) में से लिया गया है।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते॥ 3॥

अर्थ—जो प्राणों को ऊपर की ओर ले जाता है और जो प्राणों को नीचे की ओर धकेलता है, हृदय के मध्य में रहनेवाले उस वामन (छोटे-से) देवता की (इन्द्रियाँ) उपासना करती हैं अर्थात् उसकी सेवा करती हैं।

अभिप्राय यह है कि उस संयमी जीवात्मा की, जिसका वर्णन मंत्र 2-2-3 में किया है, प्राण (इन्द्रियाँ) सेवा करते हैं; वे उच्छृंखल घोड़े की भाँति अनिश्चित मार्ग पर नहीं ले जाते।

प्राणों को ऊपर ले-जाने का अभिप्राय है शरीर के प्राणों का प्रयोग ऐसे किया जाए जिससे मन, बुद्धि, भलीभाँति काम करने लगें। यहाँ प्राण से अभिप्राय साँस लेनेवाली वायु नहीं है। जब ध्यान मस्तक पर भ्रुवों के बीच में ले-जाया जाता है तो रक्त का संचार मस्तिष्क में बढ़ जाता है। रक्त का संचार प्राण से ही होता है। यहाँ अभिप्राय है कि वह प्राणशक्ति जिससे मल नीचे उतरता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि 'ये' और इनके साथ 'तीन अन्य' वस्तुएँ हैं जो मनुष्य के जीवात्मा के अधीन नहीं होतीं। गुहा में उपस्थित परमात्मा उनको चलाता रहता है। प्राणी भोजन तो अपने यत्न से निगलता है, गले तक ले-जाता है, परन्तु आगे की गति प्राणी के अधीन नहीं रहती। वह शरीर में उस शक्ति से जाता है जो जीव के अधीन नहीं है।

इन वायुओं अर्थात् प्राणों को अपने वश में करना चाहिए। कहा है कि जब जीवात्मा इन प्राणों पर नियन्त्रण कर लेता है तो इन्द्रियाँ जीवात्मा की सेवा करने लगती हैं अर्शात् उसके सुख-सुविधापूर्वक जीवन में सहायक होती हैं।

अस्य विस्त्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत्॥ 4॥

अर्थ—इस देह में रहनेवाले के फिसलकर चले जानेवाले की देह के पीछे क्या रह जाता है? कुछ नहीं। अर्थात् वह प्राणी नहीं कहाता। यह जो फिसल जाता है वही है जिसके विषय में पूछा गया है॥ 4॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥ 5॥

अर्थ—बिना प्राण के, बिना अपान के मनुष्य, किंचित् मात्र भी जी नहीं सकता। जिसके ये दोनों आश्रित हैं, उससे ही प्राणी का जीवन है।

मनुष्य-शरीर में दो प्रकार की शक्तियाँ कार्य करती हैं। एक है प्राण। यह इन्द्रियों की शक्ति है। यह छः प्रकार की है। पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों में और एक प्रकार की पाँचों कर्मेन्द्रियों में। एक सातवाँ प्राण भी है। उसे महाप्राण अथवा श्रेष्ठ प्राण कहते हैं। यह भी पाँच प्रकार के हैं। प्राण-अपान दो के उल्लेख से उपनिषत्कार का अभिप्राय पाँचों से है। इनको महाप्राण कहते हैं। ये परमात्मा के अधीन हैं। यहाँ कहा है कि जब ये प्राणी को छोड़ जाते हैं तो जीवनान्त हो जाता है। परन्तु जीवनान्त में आत्मा सूक्ष्म शरीर के साथ शरीर से फिसलकर बाहर निकल आता है।

जो प्राण इन्द्रियों का कार्य करते हैं अर्थात् छः प्रकार के प्राण, उनका जीवन के साथ सम्बन्ध नहीं। उनके बिना जीवन दुस्तर तो हो जाता है, परन्तु उनके बिना जीवन का अन्त नहीं होता।

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम॥ 6॥

अर्थ—हे गौतम (नचिकेता!) मैं तुम्हें अब बताऊँगा कि यह जब मृत्यु को प्राप्त होता है तो गुप्त महान्, अविनाशी का क्या हो जाता है।

यहाँ ब्रह्म का अर्थ महान् ही है।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्॥ 7॥

अर्थ—अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही शरीरधारी (जीवात्मा) शरीर धारण करने के लिए किसी योनि को प्राप्त होते हैं और कितने ही स्थावर भाव (वनस्पति के रूप) को प्राप्त होते हैं॥ 7॥

यहाँ फिर भाषा में अस्पष्टता है। स्थावर प्राणी वनस्पतियाँ कहाती हैं। योनि अर्थात् उत्पत्ति-स्थान तो वनस्पतियों का भी होता है। प्राणियों के स्थावर और जंगम दो प्रकार के शरीर माने जाते हैं। यह नहीं कि एक योनिवाले हैं और दूसरे योनि के बिना हैं। वनस्पति-शास्त्र के जाननेवाले यह भी भली-भाँति जानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योनि और स्थावर भाव में प्राणियों का बँटवारा गलत है। उपनिषत्कार का अभिप्राय यही है जो हमने कहा है अर्थात् स्थावर और जंगम, परन्तु शब्द गलत प्रयोग किये हैं। योनि तो स्थावर वनस्पतियों की भी होती है। वनस्पति-शास्त्र के जाननेवाले फूल के मध्य में इस स्थान को देखते हैं।

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ 8॥

अर्थ—जो इन सोए हुए प्राणियों में जागता रहता है, वह पुरुष अपने इच्छित पदार्थों को बनाता रहता है। वह बल (अग्नि) है। वह ब्रह्म अमृत कहा जाता है। उसी के आश्रित सब लोक हैं। उसका उल्लंघन नहीं हो सकता। यही परमात्मा है॥ 8॥

उपनिषत्कार अपने नियमानुसार विषय को बदलने का संकेत नहीं करता। जीवात्मा का वर्णन करता-करता वह परमात्मा का वर्णन करने लगता है। ऊपर के मन्त्र में उसने कहा है बहुत-से शरीरधारी (संयन्ति) अपने कर्म और ज्ञान के अनुसार कितने ही शरीर धारण करते हैं, अर्थात् बहुत हैं जो बहुत प्रकार के शरीर धारण करते हैं। यहाँ भी बिना किसी प्रकार का संकेत दिये सर्वव्यापक, सोए हुओं में भी जागनेवाले का वर्णन करने लगा है।

विशेष बात यह है कि इस मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन नहीं है। इस पर भी मन्त्र के अन्त में 'एतद्वै तत्' का पद लिख दिया है। इस मन्त्र के साथ इस पद का होना विचारणीय है।

उपनिषत्कार का आशय यही प्रतीत होता है। यहाँ परमात्मा का वर्णन ही है।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ 9॥

अर्थ—जैसे एक ही अग्नि सम्पूर्ण भुवन में भिन्न-भिन्न पदार्थों में प्रविष्ट होकर उन पदार्थों के समान-रूप हो गई है, उसी प्रकार सब प्राणियों में एक ही परमात्मा उनके रूप हो गया है। वह परमात्मा प्राणियों के बाहर भी है।

इस मन्त्र में भी परमात्मा का वर्णन ही है। परमात्मा एक ही है। वह प्राणियों के भीतर है और बाहर भी है। प्राणी के भीतर होकर उस प्राणी के अनुसार ही कार्य करता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अग्नि परमात्मा का लिंग ही है। वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा नहीं है। इस पर भी अग्नि के द्वारा ही संसार के क्षर-अक्षर, मृत और जीवित के पदार्थ कार्यरत होते हैं। प्राणी के भी जो कार्य उसके सोए हुए हो रहे हैं, वे भी परमात्मा की अग्नि से ही हो रहे हैं।

प्राणियों में दो प्रकार के कार्य हैं। एक तो सबमें समान हैं। वे परमात्मा की अग्नि से होते हैं। दूसरे प्रकार के कार्य हैं जो प्राणी-प्राणी में भिन्न-भिन्न होते हैं। वे जीवात्मा के अधीन होते हैं। उनमें परमात्मा की अग्नि का हाथ नहीं होता। वह शक्ति प्राण कही जाती है, जो छः हैं। इनका वर्णन ऊपर किया है।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो
बहिश्च॥ 10॥

अर्थ—जैसे वायु भुवन में (कार्य-जगत् में) प्रविष्ट हुआ प्रत्येक पदार्थ के अनुरूप होता है, उसी प्रकार सब प्राणियों के भीतर एक आत्मा है। वह प्रत्येक प्राणी के अनुरूप होता है। उनसे बाहर भी वही है॥ 10॥

ऊपर के मन्त्र के समान ही यह मन्त्र भी है। अन्तर यह है कि वहाँ परमात्मा की शक्ति अग्नि को कार्य-जगत् के पदार्थों को कार्यरत करने की बात कही है और यहाँ वायु को कहा है। बात वही है। अग्नि और वायु परमात्मा की शक्तियाँ हैं जो इस संसार में रचना तथा पालन का कार्य करती हैं। वायु से अभिप्राय साँस लेनेवाली वायु नहीं है। इसका वर्णन वेद (ऋ० 1-2-1, 2, 3) में और बृहदारण्यक उपनिषद् (3-7) में भली प्रकार किया है। वायु परमात्मा की वह शक्ति है जो पदार्थों के अवयवों को संगठित करती है।

अग्नि, वायु, सोम, वैश्वानर, परमात्मा की शक्ति के (कार्यानुसार) भिन्न-भिन्न नाम हैं।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि जैसे परमात्मा की शक्ति कार्य-जगत् के अनेकानेक पदार्थों में कार्य कर रही है वैसे ही यह भिन्न-भिन्न प्राणियों में भी कार्य करती है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि प्राणी में जीवात्मा नहीं है। जब परमात्मा की शक्ति जहाँ पदार्थों में और प्राणियों में समान रूप से कार्य कर रही है तो उनमें भेद का कारण वेदादि शास्त्र जीवात्मा की उपस्थिति बताते हैं।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन
बाह्यः॥ 11॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ—सूर्य का प्रकाश सबकी आँखों को देखने में सहायक होता है। परन्तु वह (जन-जन की) आँखों के दोषों से असम्बन्धित है। इसी प्रकार सब प्राणियों में एक अन्तरात्मा है जो व्यक्तियों के दुःखों (दोषों) में लिप्त नहीं होता। वह उनमें है और उनके बाहर भी है ॥ 11 ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं
नेतरेषाम्॥ 12 ॥

अर्थ—एक अकेला सबको वश में रखनेवाला है। सब पदार्थों का अन्तरात्मा है। वह एक रूप (प्रकृति) को अनेक रूप में कर देता है। उसको जो धीर (विद्वान्) पुरुष आत्मा में स्थित देखते हैं उनको सर्वत्र सदा सुख प्राप्त होता है, दूसरों को नहीं ॥ 12 ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति
कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः
शाश्वती नेतरेषाम्॥ 13 ॥

अर्थ—अनित्यों में नित्य, अचेतनों का चेतन अकेला जो बहुतों की कामनाओं को धारण (पूर्ण) करता है; जो धीर (विद्वान्) उसे अपने में देखता है वह सदा के लिए शान्ति प्राप्त करता है, दूसरा नहीं ॥13 ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा॥ 14 ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति
कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा
सर्वमिदं विभाति॥ 15 ॥

अर्थ—वह ऐसा ही माना जाता है (अन्य किसी प्रकार) नहीं कहा जा सकता। वह परम सुखकारक है। उसे कैसे जानें? कैसे उसका भास (अनुभव) हो अथवा विशेष भास हो?

उसकी चमक को सूर्य भी पहुँच नहीं सकता, न चंद्र-तारागण प्राप्त हो सकते हैं, न ही विद्युत् चमकती है, अग्नि तो क्या! उससे सब-कुछ (चमकता है) और सबको वही चमकाता है ॥ 14, 15 ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वल्ली में हृदय की गुहा में बैठे दोनों तत्त्वों का वर्णन है। हम समझते हैं जिज्ञासुओं के हित में था कि दोनों का वर्णन पृथक्-पृथक् किया जाता और तदनन्तर उनका परस्पर सम्बन्ध पृथक् मन्त्रों में लिखा जाता।

यहाँ इस वल्ली में जीवात्मा का वर्णन किया है। कहा है कि मनुष्य-शरीर में नौ द्वार हैं। इस शरीर में जीवात्मा हंस समान रहता है अर्थात् संसार से अलिप्त होकर रहता है अथवा अतिथि की भाँति शरीर में रहता है इत्यादि। यह ज्ञानवान् जीवात्मा का ही वर्णन है, परमात्मा का नहीं है। यह इस कारण कि परमात्मा शरीर में अतिथि की भाँति नहीं होता। वह तो सर्वव्यापक होने से ही वहाँ होता है। अतिथि तो कहीं से आता है और फिर कहीं उसे जाना होता है। आगे कहा है कि जो प्राणों को ऊपर की ओर ले-जाता है और नीचे की ओर ले-जाता है, यह जीवात्मा ही है। वह शरीर से श्रेष्ठ कार्य भी कर सकता है और निकृष्ट कार्य भी कर सकता है।

यहाँ अभिप्राय यह भी हो सकता है कि प्राण और अपान वायुएँ परमात्मा के अधीन हैं। इस कारण परमात्मा का वर्णन किया जा रहा है। कुछ भी हो, स्पष्ट वर्णन होना चाहिए था।

यह निर्विवाद है कि हृदय की गुहा में दो आत्मतत्त्व उपस्थित होते हैं। यह हमने उपनिषद् के मन्त्र 1-3-1 के भाष्य में बताया है। ब्रह्मसूत्र में इस बात को युक्ति से सिद्ध किया है। वहाँ कहा है—**(1) सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्, (2) विवक्षितगुणोपपत्तेश्च, (3) अनुपपत्तेस्तु न शारीरः, (4) कर्म-कर्तृव्यपदेशाच्च, (11) गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्।**

इन सूक्तों का अर्थ है—सब स्थान पर प्रसिद्ध की व्याख्या से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न गुणोंवाले पदार्थ उपस्थित हैं।

प्रसिद्ध है कार्यजगत् और इसमें स्थिर और गतिशील पदार्थ देखने में आते हैं। गतिशीलों में भी दो प्रकार के हैं—शरीरी और अशरीरी। शरीरी वे हैं जो स्वेच्छा से गति करते हैं और अशरीरी वे हैं जिनकी गति किसी बाहरी शक्ति के अधीन होती है। शरीरी में भी दो प्रकार की गतियाँ हैं। एक गति प्राणी के अधीन है और दूसरी प्राणी के अधीन नहीं।

इस प्रकार गुण और कर्म तथा करनेवाले का विचार करने से, यह सिद्ध होता है कि प्राणी की गुहा में दो आत्मतत्त्व हैं।

हमारा विचार है कि उपनिषत्कार के भाव भी यही हैं। उसकी लेखन-शैली में स्पष्टता न होने से दो प्रकार के भाष्यकारों की सृष्टि हो गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीया वल्ली

उर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते। तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ 1॥

अर्थ—जिसका मूल ऊपर को और जिसकी शाखाएँ नीचे की ओर हैं, ऐसा यह अश्वत्थ का वृक्ष सनातन है। वही ओजस्वरूप है, वही ब्रह्म है, वही अमृत कहा जाता है। सम्पूर्ण लोक उसी में आश्रित हैं। उसका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता (अतिक्रमण का अभिप्राय है कि गुणों में उससे बड़ा कोई नहीं है)॥ 1॥

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ 2॥

अर्थ—जो भी यह सारा उत्पन्न जगत् है, वह प्राण (परमात्मा की अनादि शक्ति) से (एजति) चलायमान हो रहा है। जो उद्यत (उठाए हुए) वज्र की भाँति महान् भय-रूप है जो इसे जान लेता है, वह अमृत हो जाता है॥ 2॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ 3॥

अर्थ—इस (वज्र) के भय से अग्नि तपती है। इसके भय से सूर्य तपता है। इसके भय से ही इन्द्र, वायु और पाँचवीं मृत्यु दौड़ती है॥ 3॥

इन मन्त्रों में जगत् और परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है। एक अश्वत्थ है। अश्वत्थ पीपल के वृक्ष को कहते हैं। इसकी जड़ ऊपर को है और शाखाएँ नीचे को हैं। प्रथम मन्त्र में ही कहा है कि यह शुक्र (बल-वीर्य) है, यह ब्रह्म है, यह अमृत है। यह भी कहा है कि यह सनातन है क्योंकि यह ब्रह्म है। इस कारण सनातन का अर्थ पुराना नहीं, अनादि और अविनाशी मानना होगा।

फिर दूसरे मन्त्र में कहा है—**यदिदं किं च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।'** जो कुछ भी जगत् है, वह सब प्राण से चलायमान है। इसका अभिप्राय यह है कि ऊपर कहे वृक्ष में जो कुछ चलायमान है, वह प्राण के कारण ही हैं अर्थात् प्राण और वृक्ष भिन्न-भिन्न हैं। वृक्ष के एक भाग को प्राण चलायमान कर रहा है और दूसरे भाग को चलायमान नहीं कर रहा। इस सब को स्पष्ट नहीं किया।

हम यह समझते हैं कि जगत् में दो पृथक्-पृथक् तत्त्व वेद में वर्णन किये हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो रचना से पूर्व विद्यमान थे। एक था **आनीत् अवातम्** अर्थात् अक्रिय शक्ति (प्राण) और दूसरा पदार्थ था **स्वधा**। स्वधा अपने-आप को स्वयं धारण किये हुए थी (ऋ० 10-129-2); आगे कहा है कि आनीत् अवातम् सक्रिय हुआ तो एक महान् तेज के रूप में प्रकट हुआ (ऋ० 10-129-2)।

एक अन्य स्थान पर वेद में कहा है कि आरम्भ में एक शोर मचाता हुआ अश्व (रचना-कार्य को चलानेवाला) प्रकट हुआ। यह द्रुतगति से अन्तरिक्ष में फैल गया और त्रित पर लगाम के रूप में स्थित हो गया। पहले उस पर इन्द्र स्थित था (ऋ० 1-163-1, 2)। इसका भी यही अभिप्राय है कि अश्व और त्रित दो थे जो एक-दूसरे पर लगाम बनकर स्थित हो गए।

और फिर वेद के अगले मन्त्र में कहा है कि इससे त्रित के तीन प्रकार के निबन्धन बन गए। ये आपः कहे जाते हैं। इनसे वेदवाणी प्रसारित हुई और चराचर जगत् बना (ऋ० 1-163-3, 4)।

कहने का अभिप्राय यह है कि लगाम और त्रित दो पृथक्-पृथक् पदार्थ थे। त्रित से आपः बने और उनसे जगत् बना। उस शोर मचाते हुए अर्वा अर्थात् अश्व से नहीं बना।

इसी प्रकार इस उपनिषद् की इस वल्ली के प्रथम मन्त्र में जो वृक्ष का कथन है, वह मूल से शाखाओं तक एक का नहीं है। मूल, शाखाओं से भिन्न है।

वास्तव में स्थिति दूसरे मन्त्र में अधिक स्पष्ट की गई है। कहा है कि जो कुछ जगत् है जिसे प्राण रचता है और चलायमान करता है, वह जब उठाए हुए वज्र को जानता है तो अमृत हो जाता है। अभिप्राय यह है कि वज्र जो जगत् को चलायमान कर रहा है, वह भयावह है। उसको जाननेवाला जन्म-मरण से मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार वज्र और चलायमान होनेवाला पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। अब एक तीसरा तत्त्व भी बता दिया है कि जो इस वज्र को चलायमान अर्थात् जगत् को जानता है।

उपनिषत्कार ने वर्णन तो ठीक ही किया है। बात यह है कि वल्ली के प्रथम मन्त्र में ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्ष ही शुक्र है, ब्रह्म है और अमृत है। यही भ्रम का मूल कारण हुआ है जिससे अद्वैतवादी 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का घोष करने लगे हैं।

उपनिषत्कार का कथन तो ठीक है, परन्तु इस व्याख्या के साथ स्पष्ट नहीं। इसी कारण भ्रममूलक है।

वृक्ष जगत् है। इसका मूल अमृत अर्थात् परमात्मा में है। मूल वृक्ष का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह करता है। इस वृक्ष अर्थात् जगत् का निर्माणकर्ता परमात्मा है। परमात्मा निर्माण करता है अपनी शक्ति प्राण से। उपनिषत्कार बता चुका है कि प्राण सात हैं—एक महाप्राण और छः सामान्य प्राण हैं। इन प्राणों से ही जगत् का सृजन होता है और चलायमान होता है।

यहाँ सृजन का अर्थ भी समझ लेना चाहिए। सृजन में तीन पदार्थों का होना अनिवार्य है—उपादान कारण, निमित्त कारण और तीसरा भोक्ता। यह श्वेताश्वतर उपनिषद् (श्वे० 1-9) में भलीभाँति स्पष्ट किया गया है। वहाँ कहा है कि दो अजन्मा हैं। एक दुर्बल और अज्ञानी है, दूसरा शक्तिमान् और ज्ञानवान् है। एक अन्य अजन्मा है। वह अज्ञानी के लिए भोग-सामग्री प्रस्तुत करता है। ये तीनों अजन्मा, अक्षर और ब्रह्म हैं। जो इन तीनों को ब्रह्म जानता है वह ही ज्ञानी है।

तीसरे मन्त्र में कहा है कि प्राण महाशक्तिशाली है। अग्नि-सूर्य इसके कारण ही तपते हैं। वायु और इन्द्र भी इसी के कारण कार्य करते हैं।

य इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥ 4॥

अर्थ—जो (इस ब्रह्म को) देह के छूटने से पहले नहीं जान सका, वह बार-बार निम्न लोकों में शरीर धारण करता है॥ 4॥

यथाऽऽदर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके॥ 5॥

अर्थ—जैसे दर्पण में (मुख) स्पष्ट दिखाई देता है वैसे ही इस शरीर में वह स्पष्ट दिखाई देता है। जैसे स्वप्न में (धुँधला-सा ज्ञान होता है) वैसे ही पितृलोक में होता है। गन्धर्वलोक में ऐसा ज्ञान होता है जैसा जल में होता है। जैसा छाया और धूप में वैसा ब्रह्मलोक में दिखाई देता है॥ 5॥

यहाँ जगत् के वास्तविक दर्शन की बात कही है। जगत् के दर्शन का भिन्न-भिन्न लोकों में वर्णन है। स्पष्ट दर्शन तो शरीर में ही होता है। पितृलोक और गन्धर्वलोक में तो धुँधला-सा ज्ञान होता है और ब्रह्मलोक में जैसे धूप और छाया का दर्शन होता है।

धूप-छाया के विषय में हम मन्त्र 1-3-1 की विवेचना में लिख आए हैं। अभिप्राय केवल इतना है कि जैसे धूप और छाया साथ-साथ सम्बन्ध रखते हैं, वैसे ही ब्रह्मलोक में जीवात्मा और परमात्मा साथ होते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाया की भाँति जीव का अस्तित्व ही नहीं रह जाता। परमात्मा का दर्शन तो मनुष्य-शरीर में ही हो सकता है। अन्य लोकों की बात, उपनिषद् में कहे अनुसार मान सकते हैं, परन्तु इसका ज्ञान हमें नहीं।

मन्त्र में 'अप्सु' शब्द है। इसका अर्थ परमाणुओं के निबन्धन आपः भी हो सकते हैं। इस दर्शन की बात से हम यह समझे हैं कि यहाँ अभिप्राय परमात्मा के ज्ञान से है। गन्धर्व शब्द वेद में वेद-गायन करनेवालों के लिए भी है, अतः अर्थ होगा कि वेद का गायन करनेवाले परमात्मा का ज्ञान आपः के गुण, कर्म, स्वभाव जानने से होता है।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति॥ 6॥

अर्थ—आत्मा से अलग अपने कारणों से उत्पन्न होने वाली इन्द्रियों को जो जानता है वह विद्वान् चिन्ता नहीं करता॥ 6॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्॥ 7॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥ 8॥

अर्थ—इन्द्रियों से मन प्रबल है, मन से बुद्धि उत्तम है, बुद्धि से महत् और महत् से अव्यक्त (जीवात्मा) बलवान् है॥ 7॥

अव्यक्त से परे (बलवान्) पुरुष (परमात्मा है)। यह परमात्मा सब में व्यापक और अलिप्त है। इसको जानकर प्राणी मुक्त हो जाता है और अमर तत्त्व को प्राप्त होता है॥ 8॥

यहाँ पुनः स्पष्ट रूप से कहा है कि महत् से परे व्यक्त (जीवात्मा) है और व्यक्त से परे परमात्मा है।

यहाँ दो बातें समझने की हैं। एक तो यह कि स्वामी शंकराचार्य अव्यक्त का अर्थ प्रकृति करते हैं और महत् को प्रकृति का परिणाम मानते हैं। हमने महत् का अर्थ ही प्रकृति किया है। महत् और प्रकृति सूक्ष्मता में समान हैं। वे शक्ति में भी समान ही हैं। दोनों में अन्तर न तो उनकी सूक्ष्मता में है, न ही उनमें शक्ति का है। प्रकृति के परमाणु की शक्ति महत् में बहिर्मुख होती है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्तर नहीं। दोनों सूक्ष्मता और बल में समान हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी बात समझने की है कि अव्यक्त (जीवात्मा) और पुरुष में अन्तर है अथवा नहीं। मन्त्र में कहा है कि अव्यक्त (जीवात्मा) से पुरुष परे है अर्थात् सूक्ष्म और बलवान् है। निस्संदेह दोनों में अन्तर है। और जो इसी उपनिषद् (1-3-1) में 'ऋतं पिबन्तौ' कहा है, वे समकक्ष (समान रूप में दो) हैं अथवा नहीं। हमने ब्रह्मसूत्र के प्रमाण से (1-2-11 में) बताया है कि इनको ही 'आत्मानौ' कहा गया है। दो आत्मतत्त्व हैं।

इससे यह अर्थ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि अव्यक्त जीवात्मा है और महत् से अभिप्राय प्रकृति है। वैसे दोनों ही अव्यक्त हैं।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते
भवन्ति॥ 9॥

अर्थ—इसका रूप सामने नहीं दीखता, न ही आँख इसका कुछ भी देख सकती है। यह हृदय से, मन से, बुद्धि से प्रकाशित होता है (ज्ञान में आता है)। जो इसे जान लेता है वह अमृत हो जाता है।

इन मन्त्रों में जीवात्मा की ओर ही संकेत है। परन्तु स्पष्ट न कहने से भ्रम के लिए स्थान है॥ 9॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥ 10॥

अर्थ—जब मन के साथ ज्ञान से पाँचों (ज्ञानेन्द्रियाँ) स्थिर (नियन्त्रण में) हो जाती हैं, तब बुद्धि विशेष चेष्टा नहीं करती, स्थितप्रज्ञ हो जाती है। यह (जीवात्मा की) परम गति कही जाती है॥ 10॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ 11॥

अर्थ—उस स्थिर (जीवात्मा) में इन्द्रिय-धारण (इन्द्रिय-नियन्त्रण) करने अर्थात् स्थितप्रज्ञ होने को ही योग कहते हैं। जीवात्मा उस समय प्रमादरहित हो जाता है, क्योंकि योग उत्पत्ति और लय का स्थान है। आत्मा के मोक्षधाम की प्राप्ति और कर्मफल की समाप्ति का स्थान है॥ 11॥

योग का लक्ष्य यही है कि मुक्ति प्राप्त की जाए और कर्म—कर्मफल—कर्म के चक्र से छुटकारा पाया जा सके। मनुष्य-जीवन का यही लक्ष्य होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ लोग यह समझते हैं कि ब्रह्म बुद्धि इत्यादि चेष्टता का विषय ही नहीं है। वे यह इस कारण कहते हैं कि यह बुद्धि आदि का विषय होता तो बुद्धि रहते ब्रह्म प्राप्त हो जाता। बुद्धि आदि के छूट जाने के उपरान्त ही परमात्मा की प्राप्ति होती है। यही स्वामी शंकराचार्य का मत है।

परन्तु यह युक्ति और वेद के अनुसार अशुद्ध है। ब्रह्मसूत्र में यह स्पष्ट कहा है कि यद्यपि इन्द्रिय-करण ब्रह्मलोक में जाते समय छूट जाते हैं, परन्तु आत्मा में उनके अनुभव के केन्द्र बने रहते हैं। वहाँ कहा है—

अभावं बादरिराह ह्येवम्।
भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।
तन्वभावे सन्ध्यवदुपपत्तेः॥

(ब्र०सू० 4-4-10, 11, 13)

अर्थ—बादरि ऋषि का मत है कि (मुक्तावस्था में) इन्द्रियों का अभाव होता है॥ 10॥

जैमिनि का मत है कि (मुक्तावस्था में) इन्द्रियों का विकल्प होता है॥ 11॥

तन के अभाव में (इन्द्रियों का मन से) संधि-स्थान होने की भाँति यहाँ भी है॥ 13॥

इसी बात को छान्दोग्य उपनिषद् (7-26-1) में इस प्रकार कहा—

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्मण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति।

अर्थ—निश्चय रूप से इस प्रकार से देखनेवाले, इस प्रकार मनन करनेवाले और इस प्रकार जाननेवाले इस विद्वान् के लिए आत्मा से प्राण, आत्मा से आशा, आत्मा से स्मृति, आत्मा से आकाश, आत्मा से तेज, आत्मा से आपः (जल), आत्मा से आविर्भाव और तिरोभाव, आत्मा से अन्न, आत्मा से बल, आत्मा से विज्ञान, आत्मा से ध्यान, आत्मा से चित्त, आत्मा से संकल्प, आत्मा से मन, आत्मा से वाक्, आत्मा से नाम, आत्मा से मन्त्र, आत्मा से कर्म और आत्मा से यह सब हो जाता है।

हमारा मत है कि ब्रह्मसूत्र और छान्दोग्य उपनिषद् स्वामी शंकराचार्य के मत को स्वीकार नहीं करते।

इन्द्रियादि बुद्धि न होने पर भी इनके कार्य करने की सामर्थ्य मुक्त आत्माओं में होती है। इस प्रकार उन्नत बुद्धि की सामर्थ्य मुक्त जीवात्मा में भी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥ 12॥

अर्थ—न वाणी से, न मन से, न देखने से उसको प्राप्त किया जा सकता है। (तो) किसी के ऐसा कहने से कैसे जाना जा सकता है?॥ 12॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति॥ 13॥

अर्थ—'वह है' इस रूप में और तत्त्व से उसको जानना चाहिए। जब वह है इस प्रकार (जिसने) जान लिया, तो वह [गद्‌गद] प्रसन्न हो जाता है॥ 13॥

आत्मा को तत्त्वरूप से जानना चाहिए और उससे पहले उसके अस्तित्व को जानना चाहिए। प्रश्न है कैसे जानना चाहिए? क्या 'एक ने कही दूसरे ने जानी, दोनों भये ज्ञानी' वाली बात होगी? इससे तो संसार में 'परमात्मा नहीं है' ऐसा कहने और माननेवाले अधिक हो जाएँगे। ऊपर के मन्त्र (2-3-12) में कहा भी है कि किसी के कहने मात्र से कैसे जान सकेंगे? इसके लिए योगाभ्यास उपाय बताया है।

क्या उसको मानने के लिए संस्कृत भाषा में अथवा अरबी अथवा हैब्र्यू भाषा में लिखा होना पर्याप्त है? हम समझते हैं कि उपनिषत्कार का यह आशय नहीं है। किसी भी व्यक्ति, भले ही वह अति ज्ञानवान् हो, के कथन से मानना अन्धकार में टटोलने के समान है।

दर्शन-शास्त्रों ने इस गाँठ को खोल दिया है। वहाँ कहा है—

अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरव वह्नेः।

(सां० द० 1-60)

अर्थ—चक्षु आदि इन्द्रियों से जो न देखा जा सके, उसका ज्ञान अनुमान से हो जाता है, जैसे धुआँ देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है।

अनुमान प्रमाण के विषय में यह कहा है—

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम्। *(सां० द० 1-100)*

प्रत्येक सम्बन्ध को देखकर सम्बन्ध वाली प्रत्येक वस्तु का ज्ञान अनुमान कहाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध का ज्ञान हो जाए तो उस सम्बन्ध में प्रत्येक वस्तु का ज्ञान दूसरे के होने से होता है।

उदाहरण दिया है धुआँ और अग्नि का। दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य सम्बन्ध है। धुएँ को देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है, भले ही अग्नि दिखाई न देती हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। प्रत्येक बनी वस्तु विघटित होती है अर्थात् टूटती है। इस कारण जब किसी वस्तु को बनता देखें अथवा बना हुआ देखें तो उसका टूटना निश्चित है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि कोई वस्तु जहाँ रखी हो, वहाँ से हिलती नहीं, जब तक उसको हिलानेवाला कोई न हो। इस कारण हिलती-डोलती वस्तु को कोई हिलानेवाला है, ऐसा मानना पड़ेगा।

इस प्रकार के तर्क को भी प्रमाण माना गया है। इसे अनुमान प्रमाण कहा है।

आत्मा दिखाई नहीं देता, परन्तु इसका ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है।

यह इस प्रकार कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ देखने में आते हैं। यह उनके गुणों को जानकर हम देख पाते हैं। एक प्रकार के पदार्थ हैं वे जो कहीं रख दें तो वहाँ ही पड़े रहते हैं और बिना किसी दूसरे के सहाय के चलते-फिरते नहीं।

दूसरे प्रकार के पदार्थ अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि हैं जो निरन्तर स्थान बदल रहे हैं क्योंकि वे गतिशील हैं। इसके विपरीत मैदान में एक गेंद रख दें तो वह वर्षों तक भी वहाँ पड़ा रहता है परन्तु स्थान नहीं बदलता। इस प्रकार हम अनुमान लगाते हैं कि सूर्यादि नक्षत्रों को हिलानेवाला कोई है।

एक प्राणी पृथिवी पर चलता-फिरता है। स्थान बदलता रहता है। इस कारण प्राणी को चलानेवाला कोई है। प्राणी को चलानेवाला उसके भीतर ही है। साथ ही एक प्राणी को चलानेवाला दूसरे प्राणी को चलानेवाले से भिन्न है।

प्राणी को चलानेवाले इस एक को ही जीवात्मा कहा है। यह है आत्मा के अस्तित्व को जानने का उपाय और प्रमाण।

यही इस मन्त्र में कहा है कि वह आत्मा है और उसका रूप जानकर मनुष्य [गद्‌गद] प्रसन्नं हो जाता है।

आत्मा किस रूप में है यह भी अनुमान प्रमाण से ही पता चलता है। प्रत्येक प्राणी में आत्मा है और प्रत्येक प्राणी में पृथक्-पृथक् है।

इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति।

(न्याय द० 1-1-10)

अर्थ—आत्मा की पहचान है इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, चेतना।

जिसमें ये चिह्न (लिंग) दिखाई दें, वहाँ आत्मा का वास है। उसी में स्वतः चलने-फिरने के लक्षण उपलब्ध होते हैं।

उपनिषत्कार का अभिप्राय यही है कि तर्क से [अर्थात् अनुमान प्रमाण से] जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि उसमें एक आत्मतत्त्व है, वह अति प्रसन्न होता है और फिर उसे उन्नति करने की प्रेरणा मिलने लगती है।

—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ 14॥

अर्थ—जब सब कामनाएँ जो मनुष्य के हृदय में रहती हैं, छूट जाती हैं (कामनाएँ प्राप्त हों अथवा न प्राप्त हों, मनुष्य की चिन्ता का विषय नहीं रहतीं), तब वह मरणशील (मनुष्य) अमर हो जाता है। तब वह ब्रह्म को (ब्रह्मलोकों को) प्राप्त होता है।

कामनाएँ मन का विषय हैं। वे छूट नहीं सकतीं, जब तक शरीर, मन, इन्द्रियाँ साथ हैं। इस कारण कामना छूटने का अभिप्राय यह नहीं कि मनुष्य कामनारहित हो जाता है अथवा इन्द्रियों से रहित हो जाता है।

कामनाएँ पहले छूटती हैं, ऐसा कहा है और ब्रह्मलोक पीछे प्राप्त होता है। इस कारण कामना छूटने का अभिप्राय है कि कामनाओं का अच्छा अथवा उनका बुरा प्रभाव बुद्धि तथा आत्मा पर न रहे। इसी कारण हमने कहा है कि जब कामनाएँ प्राप्त हों अथवा प्राप्त न हों, यह किसी प्रकार से भी चिन्ता का विषय नहीं, अर्थात् कामनाएँ पूर्ण होती हैं अथवा पूर्ण नहीं होतीं, मनुष्य के सुख अथवा दुःख का विषय न हों तो मनुष्य कामनारहित अर्थात् (पूर्ण-काम) कहा जाता है। ऐसा मनुष्य ब्रह्म (ब्रह्म-लोक) को प्राप्त होता है।

ब्रह्मलोक से अभिप्राय है जहाँ-जहाँ तक ब्रह्म का साम्राज्य है। ब्रह्म का साम्राज्य कहाँ तक है? ब्रह्मसूत्र में कहा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः। *(ब्र० सू० 1-3-10)*

ब्रह्म अम्बर के अन्त तक धारण करता है, अर्थात् पूर्ण व्योम में ब्रह्म का वास है। बस वही ब्रह्मलोक है।

उपनिषद् (2-1-12) में लिखा है कि जीवात्मा अंगुष्ठ-समान स्थान में रहता है, अर्थात् प्राण की वह गुहा जिसमें वह रहता है, वह अंगुष्ठ-समान है। वह जीवात्मा मुक्त होकर ब्रह्मलोक को चला जाता है, जो अम्बर (व्योम) के अन्त तक है। व्योम कितना बड़ा है? कोई नहीं जानता। असीम है। अभिप्राय यही है कि ब्रह्म को प्राप्त होनेवाला अर्थात् मुक्त जीव अंगुष्ठ-समान स्थान से निकलकर असीम स्थान में वास करने लगता है।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदध्यनुशासनम्॥ 15॥

अर्थ—जब हृदय की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तब मरणधर्मा अमर हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही शास्त्रों का उपदेश है ॥ 15 ॥

हृदय है मनुष्य का मस्तिष्क। उसकी ग्रन्थियाँ हैं मन-बुद्धि द्वारा निर्मित कामनाएँ। उनके नष्ट हो जाने पर जीवात्मा अमर हो जाता है।

एक बात और समझ लेनी चाहिए। यहाँ मर्त्य को अमर होता कहा गया है। मर्त्य का अर्थ है मरणधर्मा। तो यह मर्त्य क्या है? जीवात्मा तो मरणधर्मा है नहीं और अमर वही होता है। इसका अभिप्राय यह समझना चाहिए कि जीवात्मा का जन्म-मरण में आना समाप्त हो जाता है और वह बार-बार जन्म लेना छोड़ देता है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङ्न्या उत्क्रमणे भवन्ति॥ 16॥

अर्थ—हृदय से बाहर निकलने की एक सौ एक (बहुत-सी) नाड़ियाँ हैं। उनमें एक मूर्धा (शिर के ऊपर) को जाती है। उस नाड़ी में से गमन करनेवाला जीवात्मा अमरत्व को प्राप्त होता है। दूसरी सब नाड़ियाँ आत्मा के क्रमण (अन्य जन्मों में जाने) के लिए होती हैं ॥ 16 ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये
संनिविष्टः। तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति॥ 17॥

अर्थ—लोगों के अंगुष्ठमात्र हृदय में सदा आत्मा रहता है। धैर्य से उसे (इस गुहा में से) ऐसे निकालो जैसे मुञ्ज के पूले में से तिनका निकाला जाता है। वह निर्मल अमृत (आत्मा) है। वही निर्मल (आत्मा) है ॥ 17 ॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च
कृत्स्नम्। ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो
विदध्यात्ममेव॥ 18॥

अर्थ—मृत्यु द्वारा कही गई इस ब्रह्मविद्या को प्राप्त कर और योगविधि का पालन करने से नचिकेता पापरहित हो गया (अमर हो गया)। दूसरा जो कोई इस प्रकार आत्मविद्या को जानेगा, वह ब्रह्म को जानकर पापरहित और अमर हो जाएगा ॥ 18 ॥

❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईशावास्योपनिषद् मन्त्राणां वर्णानुक्रमणिका

मन्त्रप्रतीकानि	मन्त्राङ्क	पृष्ठ
असुर्या नाम ते लोका:	3	16
अन्धन्तमः प्रविशन्ति	9	22
अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहु:	10	22
अन्धं तम: प्रविशन्ति	12	23
अन्यदेवाहु: सम्भवादन्यदाहु:	13	24
अग्ने नय सुपथा राये	18	29
अनेजदेकं मनसो जवीय:	4	17
ओ३म् ईशा वास्यमिदꣳसर्वम्	1	12
कुर्वन्नेवेह कर्माणि	2	14
तदेजति तन्नैजति	5	18
पूषन्नेकर्षे यम सूर्य	16	28
यस्तु सर्वाणि भूतानि	6	18
यस्मिन्सर्वाणि भूतानि	7	20
वायुरनिलममृतमथेदम्	17	28
विद्यां चाविद्यां च	11	23
स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्	8	20
सम्भूतिं च विनाशं च	14	25
हिरण्मयेन पात्रेण	15	25

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केनोपनिषद् मन्त्राणां वर्णानुक्रमणिका

मन्त्रप्रतीकानि	खं०	मं०	पृ०
अथ वायुमब्रुवन्वायवेतत्	3	4	47
अथाध्यात्मं यदेतत्	4	5	52
अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्	3	11	48
इह चेदवेदीदथ	2	5	42
उपनिषदं भो ब्रूहि	4	7	53
केनेषितं पतति प्रेषितं मनः	1	1	32
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्	3	4	47
तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत्	3	8	47
तद्ध तद्वनं नाम	4	6	53
तद्धैषां विजज्ञौ	3	2	45
त ऐक्षन्तास्माकमेवायम्	3	1	43
तस्माद्वा इन्द्रोऽतितराम्	4	3	51
तस्माद्वा एते देवाः	4	2	50
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यम्	3	5	47
तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यम्	3	9	48
तस्मै तृणं निदधौ	3	6	47
तस्मै तृणं निदधौ	3	10	48
तस्यै तपो दमः कर्मेति	4	8	53
तस्यैष आदेशो यदेतत्	4	4	51
तेऽग्निमब्रुवञ्जातवेदः	3	3	46
न तत्र चक्षुर्गच्छति	1	3	35
नाहं मन्ये सुवेदेति	2	2	40
प्रतिबोधविदितम्	2	4	41
ब्रह्म ह देवेभ्यः	3	1	43

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रप्रतीकानि	खं०	मं०	पृ०
यच्चक्षुषा न पश्यति	1	6	39
यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति	1	7	39
यत्प्राणेन न प्राणिति	1	8	39
यदि मन्यसे सुवेदेति	2	1	39
यद्वाचानभ्युदितं येन	1	4	38
यन्मनसा न मनुते	1	5	39
यस्यामतं तस्य मतम्	2	3	41
श्रोत्रस्य श्रोत्रम्	1	2	33
स तस्मिन्नेवाकाशे	3	12	48
सा ब्रह्मेति होवाच	4	1	49

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोपनिषद् मन्त्राणां वर्णानुक्रमणिका

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	व०	मं०	पृ०
अग्निर्यथैको भुवनम्	2	2	9	101
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः	2	1	12	95
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः	2	1	13	96
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः	2	3	17	114
अजीर्यताममृतानाम्	1	1	28	67
अणोरणीयान्महतः	1	2	20	78
अनुपश्य यथा पूर्वे	1	1	6	57
अन्यच्छ्रेयोऽन्यत्	1	2	1	69
अन्यत्र धर्मादन्यत्र	1	2	14	75
अरण्योर्निहितः	2	1	8	92
अविद्यायामन्तरे	1	2	5	71
अव्यक्तातु परः	2	3	8	108
अशब्दमस्पर्शम्	1	3	15	88
अशरीरꣳ शरीरेषु	1	2	22	79
अस्तीत्येवोपलब्धव्यः	2	3	13	111
अस्य विस्रंसमानस्य	2	2	4	99
आत्मानꣳरथिनम्	1	3	3	82
आशाप्रतीक्षे संगतम्	1	1	8	59
आसीनो दूरं व्रजति	1	2	21	78
इन्द्रियाणां पृथग्भावम्	2	3	6	108
इन्द्रियाणि हयानाहुः	1	3	4	83
इन्द्रियेभ्यः परं मनः	2	3	7	108
इन्द्रियेभ्यः परा	1	3	10	84

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	व०	मं०	पृ०
इह चेदशकद्बोद्धुम्	2	3	4	108
उत्तिष्ठत जाग्रत	1	3	14	88
उशन्ह वै वाजश्रवसः	1	1	1	56
ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति	2	2	3	99
ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाखः	2	3	1	105
ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य	1	3	1	81
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा	2	2	12	103
एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य	1	2	13	75
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे	1	1	24	67
एतदालम्बनꣳश्रेष्ठम्	1	2	17	76
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म	1	2	16	76
एष तेऽग्निर्नचिकेतः	1	1	19	65
एष सर्वेषु भूतेषु	1	3	12	87
कामस्याप्तिं जगतः	1	2	11	74
जानाम्यहꣳशेवधिः	1	2	10	73
तꣳह कुमारꣳसन्तम्	1	1	2	57
तदेतदिति मन्यन्ते	2	2	14	103
तमब्रवीत्प्रीयमाणः	1	1	2	57
तदेतदिति मन्यन्ते	2	2	14	103
तमब्रवीत्प्रीयमाणः	1	1	16	63
तं दुर्दर्शं गूढम्	1	2	12	74
तां योगमिति मन्यन्ते	2	3	11	109
तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीः	1	1	9	60
त्रिणाचिकेतस्त्रयम्	1	1	18	63
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिः	1	1	17	63
दूरमेते विपरीते	1	2	4	70
देवैरत्रापि विचिकित्सितम्	1	1	21	66
देवैरत्रापि विचिकित्सितम्	1	1	22	66
न जायते म्रियते वा	1	2	18	77

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	व०	मं०	पृ०
न तत्र सूर्यो भाति	2	2	15	103
न नरेणावरेण	1	2	8	72
न प्राणेन नापानेन	2	2	5	100
न वित्तेन तर्पणीयः	1	1	27	67
न संदृशे तिष्ठति	2	3	9	109
न सांपरायः प्रतिभाति	1	2	6	71
नाचिकेतमुपाख्यानम्	1	3	16	88
नायमात्मा प्रवचनेन	1	2	23	79
नाविरतो दुश्चरितात्	1	2	24	79
नित्योऽनित्यानाम्	2	2	13	103
नैव वाचा न मनसा	2	3	12	111
नैषा तर्केण मतिः	1	2	9	73
पराचः कामाननुयन्ति	2	1	2	89
पराञ्चि खानि व्यतृणत्	2	1	1	89
पीतोदका जग्धतृणा	1	1	3	57
पुरमेकादश द्वारम्	2	2	1	98
प्र ते ब्रवीमि तदु	1	1	14	61
बहुनामेमि प्रथमः	1	1	5	57
भयादस्याग्निस्तपति	2	3	3	105
मनसैवेदमाप्तव्यम्	2	1	11	95
महतः परमव्यक्तम्	1	3	11	85
मृत्युप्रोक्तां नाचिकेतः	2	3	18	114
य इमं परमम्	1	3	17	88
यं इमं मध्वदम्	2	1	5	91
य इह चेदशकद्	2	3	4	107
य एष सुप्तेषु जागर्ति	2	2	8	101
यच्छेद्वाङ्मनसी	1	3	13	87
यतश्चोदेति सूर्यः	2	1	9	93
यथादर्शे तया	2	3	5	107

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	व०	मं०	पृ०
यथा पुरस्ताद्भविता	1	1	11	60
यथोदकं दुर्गे वृष्टम्	2	1	14	96
यथोदकं शुद्धे शुद्धम्	2	1	15	96
यदा पञ्चावतिष्ठन्ते	2	3	10	109
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते	2	3	15	113
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते	2	3	14	113
यदिदं किं च जगत्सर्वम्	2	3	2	105
यदेवेह तदमुत्र	2	1	10	93
यस्तु विज्ञानवान्	1	3	6	83
यस्तु विज्ञानवान्	1	3	8	84
यस्त्व विज्ञानवान्	1	3	5	83
यस्त्व विज्ञानवान्	1	3	7	84
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति	1	1	29	68
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च	1	2	25	79
यः पूर्वं तपसः	2	1	6	91
यः सेतुरीजानानाम्	1	3	2	82
या प्राणेन संभवति	2	1	7	92
येन रूपं रसम्	2	1	3	89
येयं प्रेते विचिकित्सा	1	1	20	66
ये ये कामा दुर्लभाः	1	1	25	67
योनिमन्ये प्रपद्यन्ते	2	2	7	100
लोकादिमग्निम्	1	1	15	63
वायुर्यथैको भुवनम्	2	2	10	102
विज्ञानसारथिर्यस्तु	1	3	9	84
वैश्वानरः प्रविशति	1	1	7	58
शतं चैका च हृदयस्य	2	3	16	114
शतायुषः पुत्रपौत्रान्	1	1	23	66
शान्तसंकल्पः सुमनाः	1	1	10	60
श्रवणायापि बहुभिः	1	2	7	72

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रप्रतीकानि	अ०	व०	मं०	पृ०
श्रेयश्च प्रेयश्च	1	2	2	69
श्वोभावा मर्त्यस्य	1	1	26	67
स त्वमग्निंस्वर्ग्यम्	1	1	13	61
स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च	1	1	3	69
सर्वे वेदा यत्पदम्	1	2	15	57
स होवाच पितरम्	1	1	4	57
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य	2	2	11	102
स्वप्नान्तं जागरितान्तम्	2	1	4	90
स्वर्गे लोके न भयम्	1	1	12	61
हंसः शुचिषद्वसुः	2	2	2	98
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि	2	2	6	100
हन्ता चेन्मन्यते	1	2	19	78

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त
महर्षि दयानन्द
श्री कृष्ण
जगत की रचना
महाभारत
हिटलर की कहानी
श्री राम
धर्मवीर हकीकत राय
वीर पूजा (चन्द्रशेखर आज़ाद के जीवन पर)
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी अन्तिम यात्रा

शिवकुमार गोयल
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी जीवन यात्रा
स्वामी विवेकानन्द
अमर सेनानी सावरकर
क्रान्तिकारी आन्दोलन-सशस्त्र क्रांति का इतिहास
चुनौतियो से घिरा भारत

शान्ता कुमार
धरती है वलिदान की

सचदेव
पांडवप्रिया पांचाली

सुरेश
क्रान्तिकारी भगत सिंह

परमेश्वर प्रसाद सिंह
झांसी की रानी
महाराणा प्रताप
वीर वन्दा वैरागी

शंकर सुल्तानपुरी
क्रान्तिकारी आज़ाद
क्रान्तिकारी सुभाष

भरतराम भट्ट
क्रान्तिकारी देशभक्त सिख

डा० ईश्वर प्रसाद वर्मा
क्रान्तिकारी रामप्रसाद विस्मिल

बनारसीसिंह
मदनलालढींगरा और ऊधमसिंह-लंदन में गोली

सीताराम गोयल
शक्तिपुत्र शिवाजी

अरुण सागर
क्रान्तिकारी राजगुरु
क्रान्तिकारी सुखदेव
स्वामी श्रद्धानंद
लौहपुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल
मंगल पाण्डेय
नानासाहिव पेशवा
तात्या टोपे
गुरु तेगवहादुर
गुरु नानक देव

तेजपाल सिंह धामा
पृथ्वीराज चौहान एक पराजित विजेता
गुरु गोविन्द सिंह
महारानी दुर्गावती
रानी अवन्तीवाई एवं 1857 की क्रान्ति
शेरे पंजाव महाराजा रणजीत सिंह
महारानी कर्मदेवी की शौर्यगाथा- अजेय अग्नि
महारानी पदमिनी का वलीदान- अग्नि की लपटें
चन्द्रगुप्त चाणक्य कथा- अखण्ड आर्यवर्त
महर्षि वाल्मिकी कथामृत- पंक से पंकज
भारत का गौरवशाली इतिहास-हमारी विरासत

अशोक कौशिक
हरि सिँह नलवा
वोध कथाएँ
धार्मिक कथाएँ
शिक्षाप्रद कथए
पौराणिक कथाएँ

योगेन्द्र दत्त
देवयानी तथा अन्य कथाएँ
सदाचार की कथाएँ
मानवता की कथाए

रविशेखर श्रीवास्तव
प्रेरणादायक कहानिया

पूनम त्यागी
अनमोल कहानिया

मास्टर मनोज कक्कड़
सैल्फ डिफैन्स "चाईनीज कुँग-फू"

www.hindisahityasadan.com
2 वी डी चैम्वर्स, 10/54 डी वी गुप्ता रोड, करोल वाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : hindisahityasadan@gmail.com Tel : 9213527666, 7065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सदन द्वारा प्रकाशित राजनीतिक रचनाएं

धर्म संस्कृति और राज्य		गुरुदत्त
भारत गांधी नेहरु की छाया में		"
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान ...... हिन्दू राष्ट्र		"
राष्ट्र राज्य और संविधान		"
हिन्दुत्व की यात्रा		"
स्व अस्तित्व की रक्षा	(2 भाग)	"
धर्म तथा समाजवाद		"
मनुष्य और समाज		"
भारत में राष्ट्र		"
प्रजातंत्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था		"
वुद्धि वनाम वहुमत		"
मैं हिन्दू हूँ	(राजनैतिक संस्मरण)	"
अन्तिम यात्रा	(डा० मुखर्जी की)	"
भाव और भावना	(संस्मरण)	"
भाग्यचक्र	(संस्मरण)	"
स्वाधीनता के पथ पर	(स्वाधीनता आन्दोलन 1930 से 35 का काल)	"
पथिक	(स्वाधीनता आन्दोलन 1935 से 40 का काल)	"
स्वराज्यदान	(स्वाधीनता आन्दोलन 1940 से 46 का काल)	"
विश्वासघात	(स्वाधीनता आन्दोलन 1946 से 47 का काल)	"
देश की हत्या	(स्वाधीनता आन्दोलन 1947 से 48 का काल)	"
दासता के नए रुप	(1948 से 49 का काल)	"
सदावत्सले मातृभूमे	(1949-.... का काल	"
राष्ट्रीय नेताओं की एतिहासिक भूलें		बिशनचन्द्र सेठ
चुनौतियों से घिरा भारत		शिवकुमार गोयल
देश विभाजन का खूनी इतिहास		जस्टिस जी डी खोसला
देश विभाजन की पीढ़ा		डा० विमला मल्होत्रा
गांधी तेरे देश में	(नाटक)	राजवीर सिंह
दुर्योधन के रहते क्या कभी महाभारत रुका है?	(कविताएं)	प्रो० के बी यादव

www.hindisahityasadan.com

2 बी डी चैम्बर्स, 10/54 डी बी गुप्ता रोड, करोल बाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05

E-mail : hindisahityasadan@gmail.com Tel : 9213527666, 7065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की प्रतिनिधि रचनाएं

श्री गुरुदत्त की सशक्त लेखनी से लिखे गए 200 के लगभग अनुपम उपन्यासों में से चुनिन्दा रचनाएँ दस खण्डों में प्रकाशित।

खण्ड 1 - मेघवाहन, सागर तरंग, विक्रमादित्य साहसांक (ऐतिहासिक उपन्यास)

खण्ड 2 - सहस्त्रवाहू, गगन के पार, अन्तरिक्ष में (विज्ञानिक उपन्यास)

खण्ड 3 - कला, कामना, अनदेखे वन्धन (सामाजिक उपन्यास)

खण्ड 4 - एक और अनेक, मानव (भावनाप्रधान सामाजिक उपन्यास)

खण्ड 5 - परित्राणाय साधूनाम् (सम्पूर्ण महाभारत कथा उपन्यास रूप में)

खण्ड 6 - स्वाधीनता के पथ पर, पथिक (राजनीतिक श्रृंखला के प्रथम उपन्यास)

खण्ड 7 - स्वराज्यदान, दासता के नए रूप (राजनीतिक श्रृंखला की दो कढ़िया)

खण्ड 8 - देश की हत्या, विश्वासघात (राजनीतिक श्रृंखला के अन्तिम उपन्यास)

खण्ड 9 - प्रभातवेला, कुमार सम्भव, उमड़ती घटाएं (पौराणिक उपन्यास)

खण्ड 10- गंगा की धारा (मुगल काल पर उपन्यास)

चिकित्सा, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, धर्म, दर्शन, संगीत, कम्प्यूटर, ओशो
वाल साहित्य तथा हिन्दी साहित्य
www.hindisahityasadan.com
2 वी डी चैम्बर्स, 10/54 डी वी गुप्ता रोड, करोल वाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : hindisahityasadan@gmail.com Tel : 9213527666, 7065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की वेद, श्रीमद्भगवद्गीता, दर्शन शास्त्रों व उपनिषदों पर रचनाएं

वेद मन्त्रों के देवता

वेद और वैदिक काल

वेदों में सोम

वेदों में इन्द्र

विश्वेदेवा

सायंस और वेद

अद्वैत मीमांसा

विज्ञान और विज्ञान

सृष्टि रचना

वेद प्रवेशिका

यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म

हमारी सांस्कृतिक धरोहर

ईश केन् कठ उपनिषद्

तैत्तिरीय उपनिषद्

प्रश्न ऐत्तरेय उपनिषद्

मुण्डक माण्डूक्य उपनिषद्

श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)

श्रीमद्भगवद्गीता (अध्ययन)

सांख्य दर्शन

न्याय दर्शन

ब्रह्मसूत्र -1 (वेदान्त दर्शन)

ब्रह्मसूत्र -2 (वेदान्त दर्शन)

चिकित्सा, ज्योतिष, वास्तुशास्त्र, धर्म, दर्शन, संगीत, कम्प्यूटर, ओशो
वाल साहित्य तथा हिन्दी साहित्य
www.hindisahityasadan.com
2 वी डी चैम्बर्स, 10/54 डी वी गुप्ता रोड, करोल वाग पुलीस स्टेशन के पास, नई दिल्ली-05
E-mail : hindisahityasadan@gmail.com Tel : 9213527666, 7065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त की ऐतिहासिक पुस्तकें

अस्ताचल की ओर (3 भाग)
अवतरण
कुमकुम
खण्डहर बोल रहे हैं (3 भाग)
गंगा की धारा
अमृत मन्थन (राम कथा-1)
परम्परा (राम कथा-2)
अग्नि परीक्षा (राम कथा-3)
जमाना बदल गया (4 भाग)
दो लहरों की टक्कर (2 भाग)
दिग्विजय
पत्रलता
परित्राणाय साधूनाम (महाभारत पर आधारित सम्पूर्ण उपन्यास)
भैरवी चक्र
मेघवाहन
महाकाल
युद्ध और शान्ति
लुढ़कते पत्थर
वाम मार्ग
विक्रमादित्य साहसांक
वैशाली विलय (बहती रेता)
शकराज जयदमन
सागर तरंग

श्री गुरुदत्त की राजनीतिक रचनाएं

वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान ..... हिन्दू राष्ट्र
राष्ट्र राज्य और संविधान
हिन्दुत्व की यात्रा
धर्म संस्कृति और राज्य
मनुष्य और समाज
भारत में राष्ट्र
भगनाश
प्रजातंत्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था
भारत गांधी नेहरू की छाया में
धर्म तथा समाजवाद
बुद्धि बनाम बहुमत
स्व अस्तित्व की रक्षा (2 भाग)
मैं हिन्दू हूँ (राजनैतिक संस्मरण)
भाव और भावना (संस्मरण)
भाग्यचक्र (संस्मरण)

www.hindisahityasadan.com
E-mail: indiabooks@rediffmail.com Tel : 09213527666, 07065618655

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-E आगत संख्या 167891
E

पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

प्रवचना
प्रतिशोध
प्रारब्ध और पुरुषार्थ

सपनगली
साहित्यकार
सुमति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त के सर्वाधिक चर्चित रचनाएं

स्वाधीनता के पथ पर	(स्वाधीनता आन्दोलन 1930 से 35 का काल)
पथिक	(स्वाधीनता आन्दोलन 1935 से 40 का काल)
स्वराज्यदान	(स्वाधीनता आन्दोलन 1940 से 46 का काल)
विश्वासघात	(स्वाधीनता आन्दोलन 1946 से 47 का काल)
देश की हत्या	(स्वाधीनता आन्दोलन 1947 से 48 का काल)
दासता के नए रुप	(1948 से 49 का काल)
सदावत्सले मातृभूमे	(1949-.... का काल)

श्री गुरुदत्त की सामाजिक रचनाएं

अमानत
अनदेखे वन्धन
आवरण
अन्तरिक्ष में
आकाश पाताल
इवलीस
एक मुँह दो हाथ
कला
घर की वात
आशा निराशा
अपने पराए
कामना
गुंठन
चंचरीक
छलना
ज़िन्दगी
जीवन ज्वार
धरती और धन
न्यायाधिकरण
नए विचार नई वातें
नगर परिमोहन
नास्तिक
पंकज
परिमल
परिवर्तन
पड़ोसी
प्रवंचना
प्रतिशोध
प्रारव्ध और पुरुषार्थ

प्रेयसी
प्रेरणा
वन्धन शादी का
भगवान भरोसे
भग्नाश
भाग्य का सम्वल
भावुकता का मूल्य
भूल
भूत और भविष्य
ममता
मायाजाल
मृगतृष्णा
मैं न मानूँ
यह संसार
यात्रा का अंत
युद्ध और शान्ति
लालसा
लोक परलोक
विकार
विलोम गति
विकृत छाया
स्वार्थ
सव एक रंग
सभ्यता की ओर
स्नेह का मूल्य
संस्कार
सफलता के चरण
सर्वमंगला
साहित्यकार
सुमति

Central Library
167891
Gurukul Kangri (Deemed University), Haridwar
081
167891

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक की वेद, उपनिषद, दर्शन एवं वैदिक विज्ञान पर प्रमुख रचनाएं

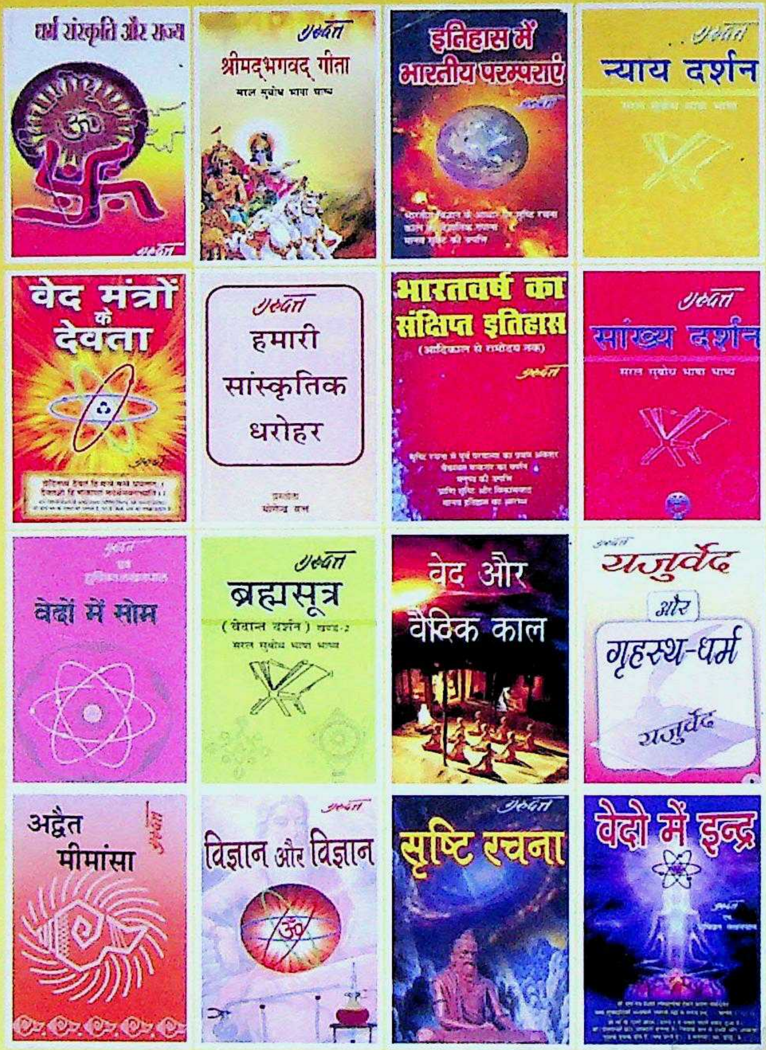

हिंदी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर, 10/54, देशबन्धु गुप्ता रोड, करोल बाग,
नई दिल्ली-110005 फोन : 07065618655, 09213527666
E-mail : indiabooks@rediffmail.com , hindisahityasadan@gmail.com
Website- www.hindisahityasadan.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar